वीरवंश वर्णनम्

भाषा-टीका सहितम्

लेखक
पं० नगजी रामजी शर्मा

॥ ॐ परमात्मने नम ॥

॥ वीरवंश वर्णनम् ॥

भाषाटीका-सहितम्

विख्यातमीद्य कुरुते यशस्विन चेहेतिहासो मनुजस्वतत्परम् ।
यस्येतिहासो मरवाचिविघते सँवोनजीव्यस्त परस्तु सस्थित ॥१॥

उक्त ग्रन्थ–

श्रीमान् बनेडाधीश श्री श्री १०८

श्री राजा अमरसिंहजी वर्मा

की आज्ञानुसार बनेडा राजगुरु

प० नगजी रामजी शर्मा ने

निर्माण कर प्रकाशित

किया ।

वि० सवत् १९८५ रक्षा-बन्धनदिन

प्रथमावृत्ति १०००

॥ ओ३म् ॥

भूमिका ।

इतिहास ही संस्कृत और सब देशों की भाषाओं में साहित्य का प्रधान अंग है—इसीके द्वारा हमें प्राचीन राज्यों का हाल, देश की दशा, और विद्या, कला, सभ्यता आदि विविध विषयों का दिग्दर्शन होता है यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि इतिहासजन्य ज्ञान ही सर्वथा सभ्यता का आधार है । अतएव मेरी समझ में हर देश हर प्रान्त और यहां तक कि—हर ग्राम का इतिहास रहना वहां की—जनता के हितार्थ नितान्त आवश्यक है । प्राचीन इतिहास ही के कारण भारत का मुख उज्ज्वल है । क्योंकि यह पूर्वकालीन सत्पुरुषों के—सद्गुणों का समुद्र है—जो हमारी जीवन जागृति का अनन्त स्रोत है । पूर्व प्रसिद्ध देश हितार्थ आत्मत्यागी महान्पुरुषों के चिन्तन मात्र से असीम सुख होता है—उनके पवित्र चरित्रों की हमारे पर गहरी छाप लगती है । हर एक सांसारिक भाषा परिवर्तनशील है—परंच संस्कृत में यह विचित्रता है कि न तो आज तक इसमें कोई परिवर्तन हुआ है और न होने ही की संभावना है । इसी अटल सिद्धान्तानुकूल मेरी आज्ञा से राजगुरु पण्डित नगजीरामजी शर्मा ने बनेड़े राज्य का इतिहास बहुत परिश्रम कर संस्कृत में बनाया है । पण्डितजी ने अपनी कृति में इतिहास का ही नहीं परन्तु अपूर्व काव्य का भी रसास्वादन कराया है । इस परिश्रम और राज्य की सेवा के लिये मैं

इनका बड़ा कृतज्ञ हूँ। परंच यह इतिहास संस्कृत में होने से इसका आनन्द पूर्ण विद्वान ही उठा सकेंगे अन्य साधारण भाषाभाषी इस आनन्द से वंचित रहेंगे। इस कारण इसका सरल भाषा में अनुवाद अजमेर गवर्नमेन्ट हाई स्कूल के अध्यापक हिन्दी प्रभाकर पं० शंकरदत्तजी शास्त्री द्वारा करा दिया है। अत्यन्त दुःख है कि पण्डितजी के नेत्रों में १५ वर्ष से बाधा है इसलिये मूलग्रंथ में भी जहां कहां लिखित दोष रह गया था। इनहीं शास्त्रीजी ने ठीक कर दिया है। प्रूफ संशोधन पूर्ण ध्यान पूर्वक किया गया था। परन्तु कारण विशेष कई एक त्रुटियां रह गई हैं जिन्हें उदार पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें। भूल होना मनुष्य-मात्र से संभव है।

दृष्टं किमपि लोके स्मिन्ननिर्दोषं ननिर्गुणम् ॥
आवृणुध्व मतोदोषा न्विवृणुध्वं गुणान्बुधाः ॥ १ ॥

॥ इति शुभम् ॥

बनेड़ा (मेवाड़) } राजा अमरसिंह

अथ वीरवंश वर्णन स्यानुक्रमणिका

अथ तृतीय पर्वः ।

अथ चतुर्थ पर्वः ।

इति चतुर्थ पर्वः ।

इति पञ्चम पर्व ।

विषय	श्लोकां.	पृष्टाङ्क
अथ षष्टम पर्वः ।		
राजा रायसिंह का राज्याभिषेक ।	२४९	९१
राजा रायसिंह का राजपुर के नामसे वर्तमान् वनेड़े का वसाना ।	२५२	९२
महाराणा अड़सीजी के समय दुष्ट सामन्तों ने एका कर मेवाड़ में उपद्रव मचाया तो सन्धि के नियमानुसार राजा रायसिंह का उदयपुर जाना और सामन्तों को समझा के महाराणा से सन्धि करा देना ।	२५३	९२
राजा रायसिंह की १ राणी श्याम विहारी जी को मन्दिर चोखी वाव ओर तीन राजकुमारों का वर्णन ।	२५६	९३
माधव राव सिन्धिया ने मेवाड़ पर चढ़ाई की तय्यारी की तो रक्षा के लिये महाराणा के बुलाने पर राजा रायसिंह का फोज के सहित उदयपुर को जाना और वहां से महाराणा की फोज को संग लेके शिप्रा के किनारे सिन्धिया से वीरता के साथ लड़के संग्राम में दिवलोक को प्रयाण कर जाना ।	२५९	९४
इति षष्टम पर्वः ।		
अथ सप्तम पर्वः ।		
राजा हम्मीरसिंह का राज्याभिषेक ।	२७२	१०१
राजा हम्मीरसिंह का झाला से लड़के उसको परास्त करना और महाराणा की आज्ञा से कुम्भल गढ़ जा गुमान भारती नाम डाकू को मारना ।	२७५	१०२

इति त्रयोदश पर्व ।

अथ चतुर्दश पर्वः

इति चतुर्दश पर्व ।

इति श्री वीरयश वर्णनस्य विषयानुक्रमणिका।

॥ पाठकों को विशेष सूचना ॥

प्रेस की उपरोक्त विशेष अशुद्धियों को उद्धृत कर शेष को छोड़ दी गई हैं और वर्त्तमान समय नवीन श्रेणी के शास्त्रि लोग श्लोक के प्रथम पाद और द्वितीयपाद के तथा तृतीय और चतुर्थपाद के मध्य महर्षि पाणिनीय प्रणीत सूत्रानुसार जो संधि होती है उसको नहीं कर महर्षि के सूत्र तथा प्राचीन लेखशैली का अनादर करते हैं और यह अनुचित रीति किसी ग्रन्थ की प्राचीन लिपी में कहीं भी नहीं पाई जाती। टीकाकार महाशयने इस ग्रन्थ में भी ग्रन्थकर्ता के विपरीत उपरोक्त अनुचित् शैली का विशेष अवलम्बन किया है ग्रन्थ का अधिक भाग छप जाने पर मैंने मूल ग्रन्थ से मिलान किया तो यह शैली मूल ग्रन्थ में कहीं भी नहीं पाई गई फार्मशोधने के समय मैंने मूल ग्रन्थ के समान् ग्रन्थ-शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखा था परंतु प्रेस वालों का विशेष ध्यान टीकाकार की लिपी के अनुकूल रहने से अशुद्धियां छप गई और उससे विपरीत भी जिनके सुधार पर यदि हो सका है तो विशेष ध्यान दिया जायगा वा द्विरावृत्ति में शुद्ध करना होगा।

❀ शुभं भूयात् ❀

निवेदक—

पं॰ मगनलाल शर्म्मा।
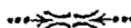
॥ वीरवंश वर्णन का शुद्धा शुद्धिपत्रम् ॥

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	५	दष्ट्वा	दृष्ट्वा
६	११	उनन्ते	वे उन
१२	२१	रद्ध्यु	रद्धयु
१८	३४	सँस्कृतान्तत्र	सँस्कृतास्तत्र
२३	१६	कुन्चनम्	कुञ्चनम्
३०	१२	राज्यकी	राजधानी की
३३	२२	यवनपति	यवन सेनापति
३५	८	जित्वा खल	जित्वेत्थक
३५	११	मोचइत्वा	मोचयित्वा
४२	१०	राज्यस्य	राज्ञ्यस्य
४३	१४	राज्ञथ।	राज्ञ्यथ
४५	१२	तावद्धिजे	तावद्विजे
४६	१	राजस्य	राज्ञ्यस्य
५२	४	उत्तर	उत्तम
५६	२	सरशस्तटे	सरतस्तटे
५७	१६	केसरी	केशरी
६४	६	सैयराटयको	सैयराव्यको
६६	१९	मानुकुमारि	मानकुमारि
६७	१५	श्रीमद्वनेडेस	श्रीमद्वनेडेश
७२	१४ १५	मन्दिरम् अध्यद्भुत	मन्दिरमध्यद्भुत

पत्रं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१०	प्रमितेऽप्थ	प्रमितेऽथ
७७	१६	साम्राज	सम्राज
८०	१७-१८	दृढ़ाःतिष्ठन्ति	दृढ़ास्तिष्ठन्ति
८: से ८९ तक	शिरपर	सुलतानसिंह	सिरदारसिंह
८७	१९	राजारायसिंह	राजा सिरदारसिंह
१०७	८	राजसिंह	गजसिंह
११२	४	राजस्य	राज्यस्य
१२१	८	युवराज मण्डलसिंह	युवराज जय मण्डलसिंह
१२१	२०	नवेन्दुसम्मिते	गजेन्दु सम्मिते
१२८	१०	स्याद्धत्तको	स्याद्दत्तको
१२६	१३	तद्द्रुम्	तद्द्रुतम्
१२६	२०	साङ्गन्स	साङ्गान्स
१२६	८	कुमार योवरंप	कुमारयोर्वरं
१३७	२	सन्श्रुत्य	संश्रुत्य
१३७	१२	सुनना और वे	सुनवे
१४०	२२	सन्तृत्य	सन्तृप्य
१४५	१३	भुंगतेस्म	भुङ्क्तेस्म
१६०	३	गोपुरात्	गोपुराद्
१७७	११	बुधैक्षितेः	बुधैःक्षितेः
१८२	१७	कद्दानै	किंदानैः
१८९	१८	समासत्तमुत्तरार्द्धम् ।	समासमुत्तरार्द्धम्

॥ इति ॥

पूर्व पीठिका
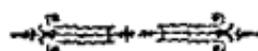
१—उद्दण्ड कोदण्ड विमुक्त काण्डै,
लङ्कापतेः खण्डित पिण्डमुण्डम् ।
शस्त्रास्त्र शौण्ड रणभूप्रचण्डं,
रामं प्रपद्ये नयशौर्य्य भाण्डम् ॥ १ ॥

वीर वंश वर्णन करने में वीरों ही का स्मरण श्रेयस्कर होता है अतः मैं निज-प्रबल-धनुष द्वारा लंकेश रावण का नाश करने वाले और रणाङ्गण में शस्त्रास्त्र विद्या द्वारा भयानक-रूप धारी, वीर शिरोमणि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराज का सर्वथा आश्रय लेता हूँ ॥१॥

२—तीव्रैकलिङ्गे भव दुःख दारिणि,
सीसोद्व वंशावन काय धारिणि ।
भूयाद्रतिर्वो दितिजान्त कारिणि,
स्वेभ्यो नितान्तं जनि मृत्यु वारिणि ॥२॥

जिनके इष्ट और कृपा से वीराग्रगण्य सीसोद्व वंश ने उज्ज्वल यश प्राप्त किया है, उन उक्त वंश-रक्षक, संसार क्लेश-विनाशक तथा त्रिपुरादि दैत्य विध्वंसक और वीरगति प्राप्त अपने भक्तों को अचल कैलास निवास देने वाले एकलिंग नाम धारी शंकर में आप लोगों का अचल प्रेम रहे यह मेरी शुभ कामना है।

३—ब्रह्मा स्वभूनाभि सरोरुहात्ततः,
श्रीकश्यपोऽस्मात्सविता ह्यजायत ।
तस्माद्वि वैवस्वतकस्ततोऽभव
त्रिक्ष्वाकुमुख्या नव संख्यका नृपाः ॥ ३ ॥

स्वयं समुत्पन्न परम पिता जगदीश्वर के नाभि कमल से ब्रह्मा हुए और उनसे सूर्य ने प्रकाशित हो के वैवस्वत मनु को उत्पन्न किया, जिनसे इक्ष्वाकु आदि नव राजा हुए ।

४—स्वेष्टा यथिक्ष्वाकु यशो धराणा-
मुच्यन्तया सिन्धु महीश्वराणाम् ।
सीसोद्ववंशाधिप सत्तमानाम्,
केचिद्वदान्या इह ते नृपाणाम् ॥ ४ ॥

अब महाराजा इक्ष्वाकु वंश के यशस्वी, समुद्र पर्य्यन्त भूमि के शासक, सीसोद्व वंश के उत्तम राजाओं मे से जो दान-शील कुछ भूपाल हमें अभीष्ट हैं उनका यहाँ वर्णन किया जाता है ।

५—क्वायं विवस्वत्प्रभवो हि वंशः,
क्वात्यल्प संविद्विषणोऽहमेव ।
संख्यावतां तद्यपि सत्कृतिर्मे,
श्लाघ्यातिहृद्यैव भविष्यतीयम् ॥ ५ ॥

कहाँ तो पवित्र सूर्य वंश ? और कहाँ तुच्छ बुद्धि मैं ! तो भी उज्वल सीसोद्व वंश के वर्णन करने से प्रशंसनीय पद को प्राप्त हुई यह मेरी कृति विद्वानों के मन को अवश्य आकर्षित करेगी ॥ ५ ॥

६—नो कश्चिदप्यत्र हि दीर्घसूत्री,
जातो न लोकाऽप्रियं कृत्र भीरुः
सर्वे प्रजारञ्जनतत्परा वै,
गोविप्र दीनार्त्ति हरा बभूवुः ॥ ६ ॥

इस वंश मे कोई भी राजा आलसी, डरपोक और प्रजा का अनिष्ट करने वाला नहीं हुआ, प्रत्युत सभी गो, ब्राह्मण और दीनों के दुःख निवारण करने मे प्राण न्योछावर करने वाले तथा प्रजा को प्रसन्न करने मे प्रवीण ही हुए॥ ६ ॥

७—धर्मस्य रक्षैव बृहन्नितान्तम्,
व्रत कुलस्यैकमिहास्य कान्तम् ।
आचार पूतो जगतां प्रपाता,
वंशोस्त्यय धर्मभृतान्निधातो ॥ ७ ॥

क्योंकि इस वंश का हमेशा यही एक महान, पवित्र, अभीष्ट नियम रहा है कि "धर्म की रक्षा करना" इसलिए सदाचार से पवित्र और प्रजा का पालक यह वंश धर्मिष्ठ पुरुषों की रक्षा करने वाला है ॥ ७ ॥

८—सर्वेऽत्रजाताश्च सदात्तबद्धाः,
भूपा य आर्य्यानवितु द्विजान्गाः ।
इत्यार्य्यसूर्यो भुवि वंशनाथः,
गपाञ्जनेर्योऽत्र निगद्यतेऽथ ॥ ८ ॥

इस वंश के सब राजा आर्य्य वंश, गौ और ब्राह्मणों को

रक्षा करने के लिए सदा खड्ग धारण करते आये हैं इसलिए इस वंश के स्वामी को सब लोग आर्य्य कुल कमल-दिवाकर अर्थात हिन्दवा सूरज कह कर संमानित करते हैं॥ ८ ॥

९—इक्ष्वाकुवंशाधिपतेरयोध्या-
नाथस्य गेहे जगदन्तरात्मा।
रामोऽवतीर्य्यामरकार्य सिद्ध्यै,
रणे दशास्यं सबलं जघान ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकु वंशी, अयोध्या के महाराज दशरथजी के घर में सर्वव्यापक ईश्वर ने रामावतार लेकर देवताओं के लिए युद्ध में सकुटुम्ब लंकेश रावण को मारा था ॥ ९ ॥

१०—पाटानुपाटक्रमनाक गेषु,
भूपेष्वसंख्येष्वथ विक्रमीये।
(७७०)
वर्षे खसप्तर्षिमिते बभूव,
रामान्वयार्कः किल बप्पनामा ॥ १० ॥

महाराजा रामचन्द्रजी के बाद क्रमानुसार असंख्य राजाओ के परलोकगामी होने पर संवत् ७७० विक्रमी मे इनके वंश में सूर्य के तुल्य बप्प अर्थात् बापा रावल पैदा हुए ॥ १० ॥

११—मौरेय वंश्यं प्रधने महीशम्,
श्रीचित्रसिंहं विनिहत्य दुर्गम्।
वीरेण चैनेन हृतं प्रसिद्धम्,
शैलेन्द्रसंस्थं भुवि चित्रकूटम् ॥ ११ ॥

बापा रावल ने मौर्यवंशी राजा चित्रसिंह को युद्ध में विध्वंस करके उससे जगत्प्रसिद्ध चित्तोड़ के पहाड़ीगढ़ को अपने हस्तगत किया था ॥ ११ ॥

१२—सीसोद्भवशाधिप आर्य्य सूर्य्ये,
भूयो हि दिल्लीश विधुन्तुदेन ।
संग्रस्यमानेऽङ्कनवेषु गोत्रा, [१५९६]
संख्ये हि वर्ये जगदेक वीरः ॥ १२ ॥

१३—जज्ञे तदास्यान्वयपङ्कजेनः,
प्रतापसिंहोयवनेभसिंहः ।
स्थातुं न शेकू रिपवो यदग्रे,
रणे यथार्काभ्युदयेऽन्धकारः ॥ १३ ॥
(युग्मम्)

जिस समय राहुरूप दिल्ली के यवन बादशाहों ने आर्य्य-कुल-दिवाकर महाराणाओं को बार बार कष्ट पहुँचाना आरम्भ किया, उस समय संवत् १५९६ विक्रमी में इस वंश के यश को प्रकाशित करने वाले और यवनरूपी हाथियों को विदारण करने में सिंह, महाराणा प्रतापसिंह उदय हुए। जिनके सामने संग्राम में कोई भी शत्रु ठहरने में समर्थ न हुआ, जैसे कि सूर्य के सामने अन्धकार नहीं ठहरता ॥ १२ ॥१३ ॥

१४—छ्यङ्काङ्कगोत्रा प्रमिते प्रजज्ञे, [१६९२]
श्री विक्रमाब्देऽप्यमरराजसिंहः ।

आसीद्रणे यो ह्यपरप्रताप
स्तेनैवतुल्योहि नये च शौर्य्ये ॥ १४ ॥

इसके पश्चात् संवत् १६९२ विक्रमी में महाराणा राजसिंहजी ने जन्म लिया जो रणशिक्षा, पराक्रम और राजनीति में दूसरे प्रताप ही थे ॥ १४ ॥

द्वे तस्य भार्य्ये जनयां बभूवतुः,
पुत्रौ महान्तौ युगपत्क्षणांतरे ।
ज्येष्ठं तु देवी सुषुवे सुतं तयो-
राज्ञी क्षणांते ह्यवरावरं तदा ॥ १५ ॥

इनकी दो महाराणियों से दो वीर पुत्ररत्न एक साथ उत्पन्न हुए। जिनमें से बड़ी ने बड़े राजकुमार को जन्म दिया और कुछ ही क्षण के बाद दूसरी राणी ने भी वैसे ही तेजस्वी द्वितीय राजकुमार को ॥ १५ ॥

१६—भूपं प्रसुप्तं प्रसमीक्ष्य याग्रगा,
दासी महीष्या अनुकं त्वभूत्स्थिता ।
स्थानेऽवराया स्त्वनुगांघ्रि संस्थिता,
प्रत्यक्तनिद्रं चरणस्थिता तदा ॥ १६ ॥

१७—ज्ञात्वा प्रभुं पुत्रजनुर्न्यवेदयत्,
प्रागेव पश्चाच्च तदैव कस्थिता ।
श्रुत्वा तदाहात्र नृपो न जन्मना,
ज्यैष्ठं मयाहो श्रवणेन सत्कृतं ॥ १७ ॥
(युग्मम्)

यह शुभ समाचार महाराणाजी को सुनाने के लिए दोनो महाराणियों की दासिया क्रम से पहुँचीं, परन्तु महाराणा सो रहे थे, अत पहले आई हुई दासी उनके शिर की तरफ तथा दूसरी पैरों की ओर स्थित होकर उनके जागरण की प्रतीक्षा करने लगी जब महाराणा उठे तो पहले चरणों की ओर स्थित दासी को देखा और उसने भी अपना शुभ समाचार सुनाकर महाराणा को आनन्दित किया तथा पीछे से पहले आई हुई दासी ने भी बधाई दी। इस प्रकार दोनों राजकुमारों के जन्म समाचार सुनकर महाराणा ने कहा कि "मुझे पहले जिस राजकुमार के शुभ समाचार ने प्रसन्न किया है उसे ही मैं बडा स्वीकार करता हूँ पहले जन्मे हुए को नहीं, अर्थात् यहा मैंने बडे छोटे की व्यवस्था श्रवणमात्र से की है जन्म से नहीं ॥ १६ ।, १७ ॥

> १८—तौ क्रीडमानौ सह पूर्वजाभ्या,
> दृष्ट्वा नृपो मेन इमौ प्रचक्रमे ।
> भीमार्जुनावित्यपरौ क्रमेण,
> तन्नामयोगो ह्यनयोः सुनाम्नि ॥ १८ ॥

उन दोनों को अपने दोनों बडे भाइयो के साथ खेलते हुए देखकर राणा ने मन मे दूसरे भीम और अर्जुन माने, और यही उनके नाम रक्खे, अर्थात बडे का भीमसिंह और दूसरे का जयसिंह ॥ १८ ॥

> १९—वेद गुरोश्चाखिलनीतिविद्यां,
> प्राधीत्य शस्त्राण्यथ युद्धशिक्षां।

सेनापतेः प्राधिजगातके तौ,
भीमोऽभवत्तत्र तु पारदृश्वा ॥ १६ ॥

-- उन दोनों ने गुरु से वेद और संपूर्ण राजनीति की विद्या पढ़कर सेनापति से युद्ध-शिक्षा प्राप्त की। इनमें भीम सब विषयों में पारंगत हुआ ॥ १९ ॥

सेनां समस्तां रणभू प्रचंडाम्,
दृष्ट्वा सुशस्त्रां बलिबाहुजाढ्याम्।
सामन्तवर्गं खलु राज्य भक्तम्,
पूर्णं सरो राजसमुद्रकाख्यम् ॥ २० ॥

२१—ऋद्धाः प्रजाः धर्म्मपराः सपुत्रौ,
वीरौ सुतौ भीमजयोभिधानौ।
संदृश्य मेने स्वमसौ महोजा,
मेवाड़राट् तुल्यममर्त्य राजा ॥ २१ ॥
(युग्मम्)

पराक्रमी मेवाड़ाधिपति महाराणा ने अपनी संपूर्ण सेना को रणाङ्गण में बलवान् वीरों से युक्त तथा शस्त्रों से सुसज्जित होने के कारण भयङ्कर सामन्तों को राजभक्त, राजसमुद्र नामी सरोवर को सब प्रकार से संपन्न अर्थात् संपूर्ण हुआ, धार्मिष्ठ प्रजा को धन धान्य से युक्त और अपने वीर पुत्र भीमसिंह तथा जयसिंह को पुत्रों सहित देखकर के अपने को इंद्र के समान समझा ॥२०॥२१॥

२२—आर्य्याहितानां धुरि कीर्तनीय,
औरङ्गजेबो वरनिन्दनीयः।

दिल्लीश्वरो धर्म्म भृतोऽस्यदर्श,
दर्श वितेपे विभव सुरार्हम् ॥ २२ ॥

आर्यों का प्रधान शत्रु क्रूर दिल्लीश्वर औरंगजेब इस धर्मिष्ठ महाराणा के दिव्य ऐश्वर्य्य को देखकर बहुत दुःखी हुआ ॥ २२ ॥

२३—दृष्टा किलैषा प्रकृतिःखलानाम् ।
क्लिश्यन्ति दृष्ट्वा विभव पराणाम् ।
कुर्वन्त्यतस्ते व्यथितु नितान्तम्,
तान्सज्जनान्भूतिमतः प्रयत्नम् ॥ २३ ॥

क्योंकि दुष्टों की प्रकृति ही इस प्रकार की होती है कि वे दूसरों के ऐश्वर्य्य को देखकर मन में दुःखी होते हैं और इसीलिए उन ऐश्वर्य्यशाली सज्जनों को कष्ट देने के लिए सदा यत्न किया करते हैं ॥ २३ ॥

२४—अत्रान्तरे वीक्ष्य करेण पीडितान्,
श्रेपेण चार्याञ्जजियाख्यतोऽखिलान् ।
तत्तप्तचेता निजशौर्य्यदर्पितः,
श्रीराजसिंहो रणयज्ञदीक्षितः ॥ २४ ॥

२५—औरंगजेवं प्रति नीति गर्भितम् ।
पत्र लिलेखैन मसौ नयान्वितम् ।
तत्प्रेक्ष्य सम्राट् प्रचुकोप दुर्मना,
दिल्लीश्वरो म्लेच्छकुलाब्धि चन्द्रमाः ॥ २५॥
(युग्मम)

इसी अवसर पर औरंगजेब के लगाये हुए निकृष्ट जजिया (कर) से पीड़ित संपूर्ण आर्यों को देखकर महाराणा राजसिंह मन में बहुत दुःखी हुए और अपने बाहुबल के अभिमान से रणरंग में रंजित होकर, उक्त कर के प्रतिवाद स्वरूप राजनीतिसारगर्भित पत्र बादशाह को लिखा। जिसे देखकर वह म्लेच्छवंश का पक्षपाती मलीन अन्तःकरण दिल्लीश्वर औरंगजेब बहु[illegible] आ गया ॥ २४ । २५ ॥

२६—औरङ्गजेबोऽरिकुलैरजेयां,
संव्यूह्य सेनां चतुरङ्गिणीं स्वाम् ।
संवर्द्धयन्मानधनैर्विजेतुं,
चैनं प्रतस्थे रविवंशकेतुम् ॥ २६ ॥

और सूर्य्यवंश शिरोमणि महाराणा को जीतने के लिए अपनी शत्रुओं से अजेय भारी सेना को विशेष सजावट के साथ मान और धन से उत्साहित करके भेजी ॥ २६ ॥

२७—श्रुत्वा रिपूद्योगमतीव दुर्जयं,
चारैर्नृपेन्द्रो निजराज्य गुप्तये ।
भीमानुजं श्रीजयसिंहमार्य्यपं,
सीम्न्युत्तरस्यां सबलं न्यतिष्ठिपत् ॥ २७ ॥

महाराणा ने गुप्तचरों द्वारा शत्रु की भारी चढ़ाई के उद्योग को सुनकर अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तर दिशा में कुछ सेना सहित आर्य्यकुल-रक्षक जयसिंह को नियत किया ॥ २७ ॥

२८—श्रीभीमसिंह प्रणिहित्य छिद्‌छिदम्
सीम्नि प्रतीच्या बहु सैन्यसयुतम् ।
प्राच्यां स्वपुर्य्या विनियुज्य गुल्मकान्,
नीतिं समासाद्य जहौ स्वका पुरीम् ॥२८॥

और पश्चिम मे कुछ अधिक सेना के साथ शत्रुओं के काल जेष्ठ राजकुमार भीमसिंह को तथा पूर्व में छोटे छोटे थाने नियत करके युद्धनीति के अनुसार अपने शहर को छोड दिया ॥ २८ ॥

२९—राजाधिराजोऽरिबलान्तकृच्छिशु
र्युध्यारिसेनां महतीं कृतास्त्रिकाम् ।
त्यक्त्वा पुरीं स्वां प्रविवेश कानन-
मुत्तुङ्गशैलालियुतं सुगह्वरम् ॥२९॥

इस प्रकार वैरियो के नाश करने मे प्रवीण प्रतापी महाराणा ने शत्रु-सेना को सर्व प्रकार से शस्त्रादि से सुसज्जित और बढी हुई देख कर अपने नगर को छोड कर विशाल कन्दरा वाली गगन चुम्बी पर्वतमालविभूषित वनस्थली मे प्रवेश किया ॥ २९ ॥

३०—तत्रैव गुल्मान्सुनिधाय सर्वतः,
सामन्तराजैः सह सानुसंस्थितः ।
मार्गेतुभिल्लाननु कुत्र कुत्रचि ,
न्युद्धाय दिल्लीशमथाह्वयन्मुदा ॥ ३० ॥

वहाँ सर्वत्र थाने (सेना गड) स्थापित किये और कहीं कहीं मार्गों मे भीलों को बिठा दिये फिर स्वय अपने सामन्तो सहित

पर्वत शिखरों पर विराज के हर्ष पूर्वक दिल्लीश्वर को युद्ध के लिए ललकारा ॥ ३० ॥

३१—औरंगजेबोऽध्वनि चाल्प गुल्मिकान्,
देशस्यरक्षाधिकृतान्कुलोद्गतान् ।
दुःखेन निर्जित्य धरां प्रकंपयन्,
दुर्गं चितोऽद्रेः प्रजहार दुर्जयम् ॥ ३१ ॥

औरंगजेब ने इस प्रकार मार्ग में महाराणा के स्थापित किये हुए कुलीन रक्षक स्वल्प सेना खंडों को बहुत कष्ट से जीत के और तोपों से भूमि को कंपित कर के चित्तोड़ के दुर्जयगढ़ को हस्तगत कर लिया ॥ ३१ ॥

३२—दुर्गं नगेन्द्रोपरि संस्थितं दृढं,
कासारवापी बहुसौध मण्डितम् ।
देवार्हमाविश्य ननन्द सप्रियः,
स्वर्गं दशग्रीव इवामरा प्रियः ॥ ३२ ॥

अपनी प्रिया सहित दिल्लीश्वर औरंगजेब अनेक सरोवर, बावड़ी और महलों से सुसज्जित पर्वतस्थ दृढ, रमणीक तथा देवताओं के योग्य गढ़ में प्रवेश होकर इस प्रकार आनन्दित हुआ जिस प्रकार देवताओं का शत्रु रावण स्वर्ग में प्रवेश हो कर हुआ था ॥ ३२ ॥

३३—आज्ञापयामास कुमारमाजिमं,
गच्छाश्वितोऽरं सुत रुन्ध्युदेपुरम् ।

गन्तास्म्यहं श्वो लघु यत्र दुर्मदः,
सन्तिष्ठते मेरिपुराय्र्य पत्तदः ॥ ३३ ॥

पश्चात् अपने शाहजादे आजिम को आज्ञा दी कि हे पुत्र ! तुम शीघ्र ही यहा से रवाना हो कर उदयपुर को घेरलो, जहा कि हमारा शत्रु आर्य्यों का पक्षपाती अभिमानी राणा स्थित है। मैं भी कल शीघ्र ही आता हूँ ॥ ३३ ॥

३४—नत्वाथ तात प्रययावुदेपुर-
मालोक्य तत्सोपिनिजेश वञ्चितम् ।
सेनान्वितस्तत्र वसन्सुरासवान्,
हन्तासुराद्दानभि चक्रयुत्सवान्, ॥ ३४ ॥

आजिम शीघ्र ही अपने पिता को प्रणाम करके उदयपुर पहुँचा, परन्तु वहाँ भी महाराणा नहीं मिले तो वह वहा अपनी सेना सहित रह कर मद्य मास युक्त राक्षसी जनसे करने लगा ॥ ३४ ॥

अत्रान्तरे भूपनिवासकाननम्,
संप्राप्य कान्तारसुखं त्वनर्गलम् ।
औरंगजेबो रणरङ्गदुर्ज्जयः
सेनावृतस्तत्र विवेश सप्रियः ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर बहादुर औरंगजेब भी अपनी सेना और प्रिया सहित जटिल मार्ग वाले महाराणा के निवास के वन के मुख में बे रोक टोक आ पहुँचा ॥ ३५ ॥

३६—आयान्तमालोक्य तमाशु वाङ्गजाः,
पश्चास्यनाद प्रणदन्त उद्भुजाः । -

युद्धाय चोत्पेतु रुदायुधा यथा,
नागेषु सिंहोऽविषु वा वृको यथा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उनको आता हुआ देख कर शीघ्र ही सब राजपूत सशस्त्र भुजाएँ पसार सिंह गर्जना करते हुए युद्ध के लिए इस प्रकार टूट पड़े जिस प्रकार कि सिंह हाथियों पर और भेड़िये भेड़ों पर पड़ते हैं ॥ ३६ ॥

३७—तैरापतद्भीरणरङ्ग दुर्जयै
योद्धुं न शेकुर्यवना दुराशयाः ।
देवासुरस्येव सुलोमहर्षणम्,
युद्धं चतुः पञ्च दिनान्यभूदिदम् ॥ ३७ ॥

इन आये हुए रणाङ्गण में दुर्जेय मेवाड़ी बहादुरों से दुष्ट यवन भली प्रकार युद्ध नहीं कर सके; तो भी यह देवता और दैत्यों के युद्ध के समान रोमाञ्चित करने वाली लड़ाई चार पांच दिन तक होती रही ॥ ३७ ॥

३८—दिल्लीश्वर स्तद्दयिता स्थलान्तरे,
चावेष्टितावत्र पृथक् पृथग्रणे ।
वीरैः स्वराज्ञेऽरमिदं निवेदितं,
श्रुत्वाद्भुतं कर्म्म तुतोष सद्यलम् ॥ ३८ ॥

इस युद्ध में औरंगजेब और उसकी प्रिया अलग अलग राजपूतों से घिर गये । यह वृत्तान्त वीर राजपूतों ने महाराणा से जा कर तुरंत सुनाया तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥

३९—तन्यस्तशस्त्र प्रधनेऽथ तद्धनाद्,
दिल्लीशमुत्तुङ्ग गिरीन्द्रमध्यगात्।
निःसार्य्य कान्ताविरहानलार्दितम्,
मेवाड सेना हरिनाद तर्दितम् ॥ ३९ ॥

४०—दिल्लीश भार्यां प्रतिपूज्य सत्कृतां,
तद्रक्षणे स्वान्विनियुज्य सैन्यपान्।
तूर्णं ततस्तत्पतये समर्प्यतां,
दिल्ली-वरोऽवाचि पुनस्त्विदवचः ॥ ४० ॥
(युग्मम्)

मेवाडी बहादुरो के सिंहनाद मे डर कर यवन सेना ने युद्ध मे शस्त्र रख दिये अत अपनी प्रिया की जुदाई मे दुखी औरंगजेब को उन्नत पर्वतश्रेणियो की घाटी से मे निकलवा दिया और उसकी बेगम को सत्कारपूर्वक सेनाध्यक्षों की रक्षा में तुरन्त ही बादशाह के पास पहुँचा दी, और इस प्रकार समाचार कहलाया ॥ ३९ ॥ ४० ॥

४१—गच्छानया सार्द्धमर हि मामकं,
त्यक्त्वा प्रदेशं यवनेश तावकम्।
याहि प्रदेश कुशलेन सांप्रतम्,
सश्रुत्य मेवाड़पतेर्वचस्त्विदम् ॥ ४१ ॥

४२—आलोक्य काल प्रतिकूलमात्मनः,
सतसचेता अतिपाप भाजनम्।

दिल्लीश्वरो द्रव्यभृतांनिकेतनं,
कान्तान्वितोऽगादजमेरुपत्तनम् ॥ ४२ ॥
(युग्मम्)

'हे यवनेश! अब तुम अपनी प्रिया सहित शीघ्र ही हमारा देश छोड़ कर सकुशल अपने देश को चले जाओ' यह वचन सुन कर दुरात्मा औरंगजेब मन में बहुत झुँझलाया; परन्तु सोच लिया कि यह अवसर मेरे प्रतिकूल है अतः अपनी वेगम सहित भाग्य-वानों के निवासस्थान अजमेर नगर को चला गया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

४३—प्रागेव चेतो जयसिंहवर्म्मणा,
वीरेण देशाद्धि वहिष्कृतः खलः।
संन्यस्तशस्त्रः प्रधने किलाजिमः,
देशूरिणालाख्य पथेन ताड़ितः ॥ ४३ ॥

वहादुर जयसिंह ने इस घटना से पहले ही युद्धस्थल में परा-जित हो कर शस्त्र त्याग देने पर दुष्ट शाहजादा आजिम को देशूरी की नाल द्वारा पुण्यभूमि मेवाड़ से वाहर खदेड़ दिया ॥ ४३ ॥

४४—भीमोऽरिसैन्यं प्रणिहत्य भीषणं,
देशं रिपोर्गुर्जरनामधेयकम्।
आहृत्य राज्येऽप्यभयं विधायसन्,
संगीत कीर्त्तिः प्रययावुदेपुरम् ॥४४॥

यशस्वी भीमसिंह ने भी शत्रु की भयानक सेना का नाश करके गुजरात को अपने अधीन कर लिया और अपने देश में शान्ति स्थापित करके उदयपुर चले आये ॥ ४४ ॥

राजकुमार भीमसिंह की वीरता

४५—भीमो गृहीत्वा सुबृहद्दल द्रुतम्,
सत्क्षत्रिय प्रायमनल्पविक्रमम् ।
सव्यूह्य चार्येपुसहस्र मादिनाम्,
नागेन्द्र पादाति रथाधि यायिनाम् ॥४५॥

४६—जेतु प्रतीचीं प्रययौ दिश वली,
माद्रीसुतो धर्म्मसुताध्वरे यथा ।
गो विप्र देवालय दीनघातकान्,
जेघ्नीयमानः प्रविवेश गुर्जरम् ॥४६॥

(युग्मम)

कुछ समय बाद राजकुमार भीमसिंह बहादुर मेवाडी पाच हजार सरदारो की भारी चतुरगिणी सेना सजा कर पश्चिम दिशा को विजय करने के लिए इस प्रकार रवाना हुए जिस प्रकार कि महाराना युधिष्टिर के यज्ञ मे नकुल गये थे, और गो, ब्राह्मण और देव मन्दिरो को कष्ट पहुँचाने वाले दुष्ट यवनो का नाश करते हुए गुजरात मे जा पहुँचे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

४७—मेवाड़क्षेत्रे यवनेश्वराज्ञया,
देवालयान्यतरान्सहस्रशः ।
सञ्चूर्णयामासु रनार्य्यचेष्टया,
मन्दा मदान्धा यवना दुराशयाः ॥४७॥

मेवाड़ भूमि में मदान्ध दुष्ट यवनों ने बादशाह की आज्ञा से हजारों सुन्दर मन्दिरों को नष्ट कर दिये थे ॥ ४७ ॥

४८—तेषां सुशिक्षार्थमसौ सुसँस्कृतान्,
तत्र प्रसिद्धान्यवनेश्वरालयान् ।
उन्मूलयामासक मस्जिदाख्यकान्,
षष्ट्यु त्तराण्याशु चतुःशतान्यलम् ॥४८॥

उन दुष्टों को शिक्षा देने के लिए भीमसिंह ने गुजरात में बहुत सुन्दर बादशाही ४६० चार सौ साठ मस्जिदें जड़ से उखाड़ कर फैंक दी ॥ ४८ ॥

४९—तावद्धि तत्रेडरपं सुसय्यदं,
नब्वाब हासाख्य मनल्प विक्रमम् ।
निर्जित्य भीमो रणकर्कशं वली,
चक्रे वशेपत्तनमीडराख्यकम् ॥४९॥

इस चढाई में प्रथम ईडर अहमदाबाद के हाकिम नव्वाब हसनखां सय्यद बलिष्ठ को संग्राम में परास्त कर ईडर अहमदाबाद को अपने वश में कर लिया ॥ ४९ ॥

५०—अल्ला निकाय्याल् खलि होथ चूर्णसात्,
कृत्वा द्विजान् प्राचर्य तु शास्त्रिणो धनैः ।
शौर्य्यादि गीर्वाण निकेतने स्वलं,
प्राकारयामास कदान् महोत्सवान् ॥५०॥

ईडर अहमदाबाद को वश में कर बडी ऊँची २ मस्जिदो को चूर्ण के समान करके शास्त्रो के पढे हुए ब्राह्मणो को बहुतसा धन प्रदान कर विष्णु आदि देवो के मन्दिरो मे मनवाञ्छित पूर्ण करने वाले महान् उत्सवो को करवाये ॥ ५० ॥

५१—जित्वामदावादक मेव मेभ्यक,
रत्नान्य नर्घ्याण्यपि पत्तनादितः ।
द्रव्याणि वासांसि पुरूणि मण्डना,
न्यादायगाते स्मततः सरस्वतिम् ॥५१॥

धनवान पुरुषों के निवास स्थान अहमदाबाद नगर को जीत के बहुत से अनर्घ्य रत्न प्रचुर द्रव्य जेवर और वस्त्र आदिकों को ले फिर सरस्वती नदी प्रति जाने को प्रयाण कर दिया ॥ ५१ ॥

५२—सारस्वतं सिद्धपुरं रणे द्रुत,
जित्वाततो विन्दु सरोवरे वरे ।
स्नात्वाद्विजान्वेदविदोधनादिभिः
सतृप्यदीनांश्च विधानतः स्मृतेः ॥५२॥

सरस्वती नदी की तीरस्थ सिद्धपुर को सग्राम में जीतने के अनन्तर विन्दु सरोवर नामक तीर्थ मे स्नान करके वेद के पढे हुये ब्राह्मण और दीनों कों धर्म शास्त्रो के विधान-पूर्वक दान, भोजनादिकों से सन्तुष्ट कर ॥ ५२ ॥

५३—शंखोचकानां मदमत्त दन्तिनां,
पीनाङ्घ्रिनां कृत्तलभूमि भृद्भुचां ।
कृपारचक्रा तलकम्पदे पदैर्,
घिन्यास घातैः-पथिस विकम्पयन् ॥ ५३ ॥

५४—आच्छादयन्भास्कर मण्डलं खुर,
संक्षुण्ण धूलीपटलैः सवाजिनां ।
आपूरयँस्तैस्तु नभस्ततो ययौ,
प्रावृट् सुमेघै मघवेव शत्रुहा ॥५४॥
युग्मम्

शैलके समान ऊँचे कज्जल के पर्वत की समान कान्ति वाले वड़े पुष्टाङ्ग मदोन्मत्त हाथियों के पैरो के न्यास से पैर २ पर भूमि को कम्पित करता हुवा ॥ ५३ ॥

वर्षा ऋतु मे जैसे इन्द्र वद्दलो के समूह से सूर्य-मण्डल को आच्छादित कर आकाश को पूर्ण करता हुवा प्रयाण करे वैसे ही शत्रुवो का नाशक वह भीम भी घोड़ों के खुरो से चूर्ण हो उड़ी हुई धूली के पट्टल से सूर्य मंडल को आच्छादित कर आकाश को पूर्ण करता हुवा सिद्धपुर से चला ॥ ५४ ॥

५५—व्यापादयन्वैरिगणंतु दुर्जयं,
संप्राप्य सं रोधयतिस्म सैनिकैः ।
सोऽरेर्वरंतद्वडपत्तनं भटैः,
भूयिष्ठ वित्ताढ्य जनाकुलं द्दितत् ॥५५॥

जवरदस्त शत्रुवों के दाँत खट्टे करते हुये भीमसिंह ने अपनी प्रवल सेना से अनेक श्रीसंपन्न पुरुषयुक्त शत्रु के वड़नगर को जा घेरा ॥ ५५ ॥

५६—ग्रामादतोऽश्वाग्धि सहस्र सम्मिताः
सेना व्ययस्य क्षितिपाल संमताः ।

मुद्रागृहीत्वा जनताभिनाथितोऽ
गात् सूरतो तोविनिवृत्त्यपट्टनम् ॥५६॥

इस शहर के नागरिकों मे विजयी राजा के नियमानुमार हर जाने के ४० चालीस हजार रुपये लेकर और प्रजा की प्रार्थना स्वीकार करके यहा से ही पीछे पट्टन को लोट गये ॥ ५६ ॥

५७—श्रुत्वाथ भीमागमन बलान्वितम्
भीतोरणात्पट्टनपो निजम्पदम्
त्यक्त्वा समृद्ध निज जीवने हया
चक्रे द्रुत प्राणयुतः पलायनम् ॥५७॥

सेना सहित भीमसिंह के आगमन को श्रवण कर रण से डग हुवा पट्टन का हाकिम अपने प्राण पालने के लिये केवल प्राणों को ले समृद्धियुक्त निज स्थान को छोड वहा से शीघ्रही भग गया ॥ ५७ ॥

५८—नागान्धकारा मसि भल्लतारका
भेरीरवोलूकरवा बल क्षपा
भीमस्य दृष्ट्वा रिपवः स्ववेश्मसु
नीडेपु रात्रौ विविशुः खगा इव ॥५८॥

जैसे रात्री के आगमन को देख पक्षीगण अपने २ घोसलो में छिप जाते हैं वैसे ही भीम की सेना रूप रात्रि को देख शत्रु लोग अपने घरो मे छिप गये । रात्रि के समय अन्धकार होना तारों का दमकना और घूकों का भयानक शब्द होता है वैसे ही इस सेना-रूप रात्रि में भी कज्जल के समान कान्ति वाले हाथी ही अन्धकार

और उज्वल तलवार भाले आदि शस्त्रों की दमक ही तारे और भेरी (वाद्यविशेष) का नाद ही घूकों का भयानक शब्द है ॥ ५८ ॥

५६—भीमेन तत्पट्टन कं वशे कृतं
तत्पालकस्यापहृतं धनादिकम्
द्रव्याणि रत्नानि पुरूणि नीनितः
पौरेभ्य आदाय ययौ वितस्ततः ॥ ५६ ॥

भीमसिंह ने पट्टन को अपने अधिकार में कर उसके हाकिम की सर्व सम्पत्ति को हर पुरनिवासियों से भी बहुत से रत्न और धन आदि ले यहां से कच्छ को जाने के लिए प्रयाण कर दिया ॥ ५९ ॥

६०—कच्छं च सौराष्ट्रमथो जुनागढम्
निर्जित्य तेभ्यो जगृहे करादिकम्
अत्रान्तरे गौर्जरकैर्नृपेशपा
व्यञ्जेरमावेदनपत्रमर्पितम् ॥६०॥

पट्टन-विजय के अनन्तर कच्छ सौराष्ट्र और जूनागढ़ को जीत कर इन्हों से विजयी राजाओं के लेने योग्य कर आदि लिया; इसी अवसर में गुजरात वासियों ने महाराणा राजसिंह के चरण-कमलों में अत्यन्त नम्र प्रार्थना की ॥ ६० ॥

६१—श्री राजसिंहो जनतार्त्ति नाशको
भीमस्य जिष्णोर्बलजालिपूरितम्

विश्रुत्य तत्पत्र मर्थोदयार्णवोऽ
दाद् भीममाज्ञा सनिवर्त्तितु रणात् ॥६१॥

भीम की सेना जनित कष्टो से पूर्ण गुजराती प्रजा की अर्जी को श्रवण कर दयालु महाराणा राजसिहजी ने भीम को सग्राम से निवृत्त हो तुरन्त अपने देश मे लौट आने की आज्ञा भेज दी ॥ ६१ ॥

६२—आज्ञां पितुर्मूर्ध्निनिधाय शर्मदाम् ॥
गो विप्र देवान्प्रतिपूज्य सादरम् ॥
आगन्तुमार्य्य प्रतिपन्थि घातको
द्राक्सम्प्रतस्थे स्वपद कुविश्रुतम् ॥ ६२ ॥

आर्य्यों के शत्रुओं का नाशक भीम ने महाराणा राजसिहजी की आज्ञा को शिर पर धारण कर गौ-ब्राह्मणों और देवों की विधान पूर्वक पूजन करके भूमण्डल पर विख्यात अपने निजस्थान उदयपुर को आने के लिये तुरन्त प्रस्थान कर दिया ॥ ६२ ॥

६३—कुर्वन्निशी भूत महोन्नतद्रुयाद्,
छिद् श्री मुखोच्छ्रोप सरोज कुञ्चनम्
रिप्वङ्ग नारोदन जम्बुकारव,
वेरमद्विपद् गूढ कुलाय पत्त्रिशम् ॥६३॥

६४—भेर्यारवोलूकरवचचालस
पङ्क्तिः हयानां य समान वेगिनाम् ॥

गां वह्निवत् संस्पृशतां खुरोत्थित
पांशु प्रसाराभितमप्रसारकम् ॥६४॥

युग्मम्

भीम इस प्रस्थान में दिन को रात्रि के समान करता हुवा मार्ग मे चला रात्रि में कमलों का मिल जाना पक्षियों का घोसला में सो जाना शृङ्गालों का शब्द होना घूंकों का बोलना और अंधेरे का फैलाव होता है तो इस रात्रि में भीम के भय से डरे हुए वैरियों की स्त्रियों के मुखो का सूखना अर्थात् संकुचित होना ही कमलों का मिलना है और भीम के भय से डरे हुए शत्रुओं का अपने घर में छिपना ही पक्षियों का घोंसलों में सोना है और वैरियों की स्त्रियों का रोना ही शृङ्गालों का शब्द है नोबत का शब्द ही घूंकों का शब्द है और वायु के समान वेग वाले पैरों से भूमि को अग्नि के समान स्पर्श करते हुए घोड़ों के खुरो से उड़ी हुई रज का फैलाव ही अन्धकार का फैलाव है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

६५—निघ्नन्खलान्धर्म्म परान्प्रपोषयन्
सङ्गीय मानोऽर्थिभिरास कैर्ददत् ।
धनानि तेभ्यो गिरिराज मर्बुदं
पश्यन्निवृत्य स्वमतो ययौ पदम् ॥६५॥

और मार्ग में धर्मात्मा पुरुषों की रक्षापूर्वक दुष्ट यवनों का नाश करते हुए गिरिराज आबू का अवलोकन किया इस अवसर पर जितने याचक कीर्तिगान करते हुए मिले उन सबको यथेष्ट द्रव्य प्रदान करके संतुष्ट किया और वहाँ से लौटकर अपने देश में चले आये ॥ ६५ ॥

६६—सप्ताग्नि ससेन्दु मितेऽथ वत्सरे
मरुधीश्वरस्या जितसिंह वर्म्मणः ।
वीरः सहायः प्रधने प्रपद्यसः
दिल्लीशसेना प्रजघान सर्वथा ॥६६॥

इस यशस्वी वीर ने सवत् १७३७ विक्रमी मे मरुधराधीश महाराजा अजीतसिंहजी की सहायता के लिए रणागण मे जाकर दिल्लीपति यवन सम्राट् की सेना को सर्वथा परास्त किया ॥ ६६ ॥

६७—सार्द्धं स वीरैः रणकोविदैः पृथ-
गेन चर तं ह्यसिमण्डलान्मुहुः ॥
दृष्ट्वा रणेग्रेप्यरयोस्य केचन
स्थातु नशेकुरुरवो हरेरिव ॥६७॥

अपने रण चतुर वीरो सहित इसको सग्राम मे वारम्वार करवाल के पैतरों को बदलते हुए देख कोई भी शत्रु इसके आगे स्थित रहने को समर्थ न हुआ जैसे सिंह के आगे मृग ॥ ६७ ॥

६८—मत्वैनमाजा च पर किलान्तक
वीरं प्रभीतौ प्रधनात् पराङ्मुखौ
वीरौ तदेवा कवरश्च तँवर
ग्वानाख्य क स्तौ कुमती वभूवतुः ॥६८॥

इस वीर भीमसिंह को सग्राम मे दूसरा काल रूप मान के डरे हुए दुर्बुद्धि वीर अकबर और तँवरखा दोनों सग्राम मे तत्काल विमुख हो गये ॥ ६८ ॥

६६—दृष्ट्वैकदा भीममसह्यविक्रमं,
शस्त्रास्त्रशास्त्रेष्वपिपारगामिनम् ।
श्रीराजसिंहो हृदिजानविभ्रमो,
धृत्वा करेऽसिं स्विदुवाच पुत्रकम् ॥६९॥

महाराणा राजसिंह अप्रतिम पराक्रमी भीमसिंह को संपूर्ण शस्त्रास्त्रकला और राजनीति आदि शास्त्र विद्या में निपुण देखकर मन में बहुत शंकित हुए; अतः एक दिन हाथ में खड्ग लेकर उनसे यों कहा ॥ ६९ ॥

७०—आस्तावकीने सुपदे तवानुजः,
पुत्र प्रमादान्निहितोऽस्ति तच्छिरः ।
अद्यैव छिन्द्यास्त्वमनेन चासिना,
नो चेदितोऽग्रे मयि संस्थिते ततः ॥७०॥

७१—राज्यस्य नाशस्तुमिथो विगृह्यतो,
कार्यस्त्वया वीरकुलस्य कर्हिचित् ।
श्रुत्वा पितुर्वाच मुवाच सत्वरम्,
श्रीभीमसूर्योऽरितमिस्रसंघहा ॥७१॥

(युग्मम्)

हे पुत्र ! मुझे भारी संताप है कि मैं ने प्रमाद से तुम्हारे अधिकार पर तुम्हारे छोटे भाई को स्थापित कर दिया, अतः तुम इसी समय इस खड्ग से इस का शिर काट दो । यदि तुम्हें इस कार्य के करने में कुछ संकोच है तो फिर मेरे पश्चात् आपस में

लड झगड कर इस समृद्ध राज्य और कुल का नाश कदापि मत कर देना। इस प्रकार पूज्यपिता के वचन सुन कर शत्रु वृन्द-रूपी अन्धकार का मूलोच्छेदन करने मे भास्कर स्वरूप प्रतापी भीमसिंह ने शीघ्र ही ये वचन कहे ॥७०॥७१॥

राजकुमार भीमसिंह का त्याग

७२—राजेन्द्र मद्राज्यमिदं त्वयाधुना,
दत्तं वरं मेऽवरजाय तन्मुदा।
तस्मै मयाप्यर्पित मत्रसंशयो-
मा कार्यवेदिप्यृत संगरोध्यहम् ॥७२॥

महाराज! आपने तो मेरा राज्य आप की ओर से मुझे दे दिया, अब मैं अपनी ओर से मेरे लघु भ्राता को प्रसन्नता पूर्वक देता हूँ, आप इसमे कुछ भी संशय न करें। मुझे सर्वथा दृढ प्रतिज्ञ समझें ॥ ७२ ॥

७३—राजन्! गुरोर्मेऽस्ति वचोऽभि पालने,
सत्या यथास्था नतु राज्य शासने।
सेयं निदान यशसोऽस्ति भूयसः,
साम्राज्यमृद्ध सुलभं न वै यशः ॥ ७३ ॥

हे महाराज! मेरी श्रद्धा जैसी आप की आज्ञा पालने मे है वैसी राज्य करने मे नहीं। और यह श्रद्धा ही भारी यश का कारण

है; क्योंकि समृद्ध साम्राज्य तो फिर मिल सकता है परन्तु ऐसा यश सुलभ नहीं ॥७३॥

७४—पादावुपस्पृश्य मुहुस्त्वदीयकौ,
वच्मीति लोकान्तरिते भवत्यहम् ।
तोयं कदाचिन्न पिबेयमत्र स,
श्रुत्वेति हृष्टो भ्रममात्मनोऽत्यजत् ॥७४॥

मैं आप के पवित्र चरण छू कर कहता हूँ कि आप के पश्चात् इस राज्य में ठहर कर जल भी नहीं पीऊँगा' यह वचन सुन कर महाराणा राजसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी शंका सर्वथा लुप्त हो गई ॥७४॥

इति पूर्व पीठिका नाम प्रथम पर्व समाप्तम् ॥

प्रथम पर्व समाप्तः

महाराणा श्री राजसिंहजी (बीच में), राजा श्री भीमसिंहजी, राजा श्री सूर्यमलजी, राजा श्री सुलतानसिंहजी, राजा श्री सरदारसिंहजी, राजा श्री रायसिंहजी, राजा श्री हम्मीरसिंहजी, राजा श्रीभीमसिंहजी, राजा श्रीउदयसिंहजी, राजा श्रीसंग्रामसिंहजी, राजा श्रीगोविंदसिंहजी।

द्वितीय पर्व

---

(१) *राजा भीमसिंह

(सं० १७३८–१७५२ वि०)

१—प्रेतक्रिया तस्य विधाय संस्थिते,
सस्थाप्य साम्राज्यपदेऽपि चानुजम् ।
आश्वास्य सामन्तनृपानयो बल,
भीमस्ततोऽप्र प्रजहावुदेपुरम् ॥ ७५ ॥

महाराणा राजसिंहजी के स्वर्गलोकगामी होने पर भीमसिंहजी ने उनकी पारलौकिक क्रिया की और लघु भ्राता जयसिंह का राज्याभिषेक करके सम्पूर्ण सामन्त तथा सेना को आश्वासन दिया और पश्चात् शीघ्र ही उदयपुर को छोड़ दिया ॥ ७५ ॥

२—मार्गे तृषार्तोंपि सुगातिग पयः,
पात्र स लब्धस्मृति रत्निपल्वरम् ।

---

* यद्यपि भीमसिंहजी को राजा की पदवी अभी नहीं मिली है तथापि राजसिंहजी के स्वर्गारोहण होने के बाद इनका प्रधान चरित्र आरम्भ हो जाता है अतः यहीं से इनका चरित्रारम्भ माना गया ।

१७३७
इत्थं नगाग्न्यश्वमहीमितेऽब्दके,
ह्यूर्जस्य शुक्ले निजबाहुरक्षितम् ॥ ७६ ॥

३—राष्ट्रं प्रियां जन्मभुवं विहाय स,
सीमांतरं प्राप्य तृषार्दितोऽप्यलं ।
यावत्पपौ वारि हि तावदग्रतः,
आयांतमार्य्यं प्रददर्श मातुलम् ॥ ७७ ॥
(युग्मम्)

मार्ग में बहुत प्यास लगी तो जल मँगाया गया परन्तु जब अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ तो तुरन्त ही होठो के पास लाये हुए जल के पात्र को फेंक दिया और आगे चल पड़े । इस प्रकार संवत् १७३७ वि० के कार्तिक शुक्ल पक्ष में पितृभक्त भीमसिंह ने अपनी प्रिय जन्मभूमि तथा निज बाहु संपालित मेवाड़-राज्य को छोड़ा । जब मेवाड़-राज्य की सीमा पर पहुँच कर प्रबल पिपासा से व्याकुल होकर जल-पान कर रहे थे कि सामने आये हुए अपने मातुल (मामा) को देखा ॥ ७६ । ७७ ॥

४—आगत्य सोऽप्येनमुवाचशांत्वयन्,
वीरेन्द्र ! जिष्णो ! शृणु मत्प्रणोदितं ।
नेतुं भवन्तं प्रणयं निवेदितुम्,
भ्रातुश्च ते ह्यागतमार्यविद्धि माम् ॥ ७८ ॥

वह आकर उनके चित्त को संतोष देता हुआ बोला कि 'हे जयनशील वीरशिरोमणि, भीमसिंह ! मैं आपके पास आपके

भ्राता जयसिंह का नम्र निवेदन करने आया हूँ, इस वात को समझकर मेरे कथन को ध्यानपूर्वक श्रवण करें ॥ ७८ ॥

५—भ्रातस्त्वया देशहिताय दुर्हृदो,
युद्धेष्वसख्या निहता हि दुर्मदाः ।
वाक्यं कृत पूर्णतर सुनिर्मल,
मयार्ह गतु नहि देशवत्सल ॥ ७९ ॥

उन्होंने कहलाया है कि हे भ्राताजी ! आपने रणभूमि मे अपनी मातृ-भूमि की भलाई के लिए असख्य वृथाभिमानी शत्रुओं को यमालय मे भेज दिया और अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को पूरी की, किन्तु इस समय अपने प्रिय देश को छोडना उचित नहीं ॥ ८० ॥

६—दिल्लीश वाहिन्यधुना सुसज्जिता,
मेवाडक्षेत्र प्रविवेष्टुमुद्यता ।
भ्रातर्द्रुत प्रेहि निरुन्धितामलम्,
देश कुल पाहि वचांसि मे वल ॥ ८० ॥

क्योंकि इस समय तो दिल्लीपति औरंगजेब की सुसज्जित प्रबल सेना पवित्र मेवाड-भूमि मे प्रवेश करने के लिए तैय्यार हो रही है, इसलिए शीघ्र ही लौटिये और उसको रोक कर अपने देश, पवित्र सीसोदिया वश, तथा मेरे वचन और सेना की रक्षा करिये ॥ ८० ॥

७—इत्थं तदास्यात्स्वकुलेश भाषित,
श्रुत्वा नितान्त प्रियतान्नि गर्भितम् ।

साम्राज्य रक्षाभिपरं यशस्करं,
प्रेमणार्द्र चेताः प्रययौ रणस्थलं ॥ ८१ ॥

इस प्रकार उसके द्वारा अपने महाराणा के मेवाड़ राज्य की रक्षा के लिए, कीर्त्तिकारी अत्यन्त प्रिय वचन सुन कर देश तथा भ्राता के प्रेम से इतने मुग्ध हुए कि शीघ्र ही रणाङ्गण को रवाना हो गये ॥ ८१ ॥

८—भीमःप्रतस्थे यवनैर्महाबलैः,
योद्धुं यथेन्द्रोदितिजै र्महाबलैः ।
वीरैः प्रयुक्तोऽध्वनियुद्धतत्परैः,
रेजे यथेग्रोऽस्त्रधरै रिवामरैः ॥ ८२ ॥

प्रतापी भीमसिंहजी अत्यन्त बलवान यवनों से युद्ध करने के लिए इस प्रकार चले जिस प्रकार कि इन्द्र महाराज दुष्ट दैत्यों को नष्ट करने के लिए जाते हैं और मार्ग में अपने रण-विद्या-कुशल मेवाड़ी वीरों से विभूषित इस प्रकार शोभा देने लगे जैसे शस्त्रास्त्र युक्त देवसेना से महा पराक्रमी कार्त्तिक स्वामी ॥ ८२ ॥

९—देसूरिणालाख्यपथेन बाह्यकं,
द्वारं स संप्राप्य करालकण्टकम् ।
संव्यूह्य सेनां पुरतोऽस्य सुस्थले,
युद्धाय तस्थौ शिखरीव भूस्थले ॥ ८३ ॥

वे देसूरी की नाल के बाहरी कंटकाकीर्ण भयानक द्वार के सन्मुख पहुँच कर मैदान में अपनी सेना का व्यूह—चक्र बना कर युद्ध के लिए पर्वत की समान डट गये ॥ ८३ ॥

१०—भीमाभिसरक्षितमेतदल्पकं,
पर्य्याप्तमासीद्वलमुग्रशक्तिकम् ।
दृष्ट्वाबलं युद्धपिपासुकं स्वकं,
मेने सुरैरप्यखिलं ह्यजेयकम् ॥ ८४ ॥

भीमसिंहजी की रक्षा मे रहने के कारण यह स्वल्प सेना अत्यन्त शक्ति शाली और पर्याप्त थी, अत भीमसिंहजी ने इस प्रकार की अपनी सेना को युद्ध के लिए छटपटाती हुई देख कर उसको देवताओ से भी अजेय समझा ॥ ८४ ॥

११—एवं विधां क्षत्रियवाहिनीं स्थिता—
मालोक्य योद्धुं कृत भैरवा रवाः ।
उत्पेतु रुग्रा यवनाः सहस्रशो—
दीपे पतङ्गा मशका इवानले ॥८५॥

इस प्रकार की राजपूतो की प्रचण्ड सेना को देख कर युद्ध के लिए हजारों जबरदस्त यवन " अल्लाहो अकबर " इत्यादिक भयानक शब्द करते हुए कूद पडे जिस प्रकार कि दीपक मे पतग तथा अग्नि मे मच्छर पडते हैं ॥ ८५ ॥

१२—तानागतस्ते तरसैव बाहुजाः,
जघ्नुर्यथाऽजान्खलु कालिकाग्रतः ।
दृष्ट्वा स्वसेनां समरेऽरिमर्दितां,
सेनापति स्तैवरखां समाययौ ॥८६॥

वीर क्षत्रियो ने शीघ्रही आते हुए इन यवनों को कालिका देवी के सामने बकरो की भाति काटना शुरू कर दिया तो यवन

पति तैवरखाँ अपनी सेना को क्षत्रियों द्वारा नष्ट होती देख फौरन वहीं आ पहुँचा ॥ ८६ ॥

१३—आयान्त मेनं बहु सैन्य संयुतं,
दृष्ट्वाथ भीमः प्रययौ नदन्द्रुतम् ॥
क्षणेन मुण्डा कुलितं रणाङ्गणं,
दृष्ट्वा सनाथा यवनाः प्रदुद्रुवुः ॥८७॥

जब भीमसिंह ने इसे प्रबल सेना लेकर आते देखा तो शीघ्र ही वीर गर्जना करके सन्मुख आये और ऐसा घमसान युद्ध हुआ कि क्षण भर में संपूर्ण रणभूमि नर मुण्डों से भर गई और यवन सेना अपने सेनापति सहित मैदान छोड कर भगगई ॥ ८७ ॥

१४—अत्रान्तरेऽभ्र खखेन्दु संख्यका,
नादायधान्यानिबलाय वैरिणः ॥
आयात उद्दणो ध्वनि संजहारतत्,
पालांस्तु योधृन्निजघान संयुगे ॥८८॥

इसी अन्तर में शत्रुकी सेना के लिये धान्यों को लेके आते हुये १०००० बहलों को मार्ग में छीन के उनके रक्षक योद्धावों को संग्राम में मार दिये ॥ ८८ ॥

१५—पश्चात्ततोऽर्जुन्य वनाय सस्वकम्,
सैन्यं द्विधासम्प्रविभज्यजित्वरम् ।
आक्रम्यरात्रौ सहसा रिपोर्बलं,
१६—व्यापादयत् सिंह इवा जकं महत् ॥८९॥
घोरेरणेस्मिन्प्रणिहत्य दुर्नयान्,
गोघ्नान्मदान्धान्यवनान्सहस्रशः ।

उस्रानभोयोशर सख्पकास्ततो,
निर्हत्यमृत्योर्लपना च्छिरक्षिता: ॥९०॥
(युग्मम्)

इसके अनन्तर गवुओं की रक्षा के लिये अपनी जयपरायण सेना का दो विभाग कर रात्री मे आक्रमण करके शत्रुवो की सेना का विध्वस किया जैसे अजों के ममूह का सिंह । इस उपरोक्त घोर सग्राम मे अत्याचारी दुर्मदान्ध गो-घाती हजारो यवनों का विध्वस कर ५०० पाचसो गवुओं को मृत्यु के मुख से छुडा रक्षा की॥८९॥९०॥

१७—जित्वेत्थकं तैवरखान माह्वे,
धोभार कौहामयुतोत्त संचयम् ।
निर्हत्य गोपञ्चशतीं घमन्तका,
स्यान्मोचयित्वान्यरण यया वित: ॥९१॥

दुष्ट तहव्वरखा को सग्राम मे जीत के धान्य के लदे हुये १०००० दशहजार वहलो को छीन कर ५०० गवुओं को मृत्यु से छुडा यहा से अन्य रणस्थल को चला गया ॥ ९१ ॥

१८—चाणेर घट्टे जयसिंह वर्मण:,
कृत्वा सहाय स्वनृपस्य शत्रुत: ।
रुध्वाथ घट्टेपु दलेल खानकम्,
सार्द्धं बलेन प्रजघान वैरिण: ॥९२॥

१९—विप्रस्य वेप यवनो विधाय स,
नि:श्रित्य घट्टात् कपटे न दुर्मति: ।
रुद्धां क्षुधार्तां प्रविहाय वाहिनीं,
दिल्याम पागाद्यवने स्वरान्तिकम् ॥९३॥
(युग्मम्)

घाणेरा के घाटे में महाराणा जयसिंह की शत्रुवों से सहायता कर इसके अनन्तर सेना के सहित दलेलखां को घाटों में बन्द कर उसके सैनिकों का नाश करता हुवा वह दुष्ट दलेलखां ब्राह्मण का भेष बना छलकर घाटे से निकल के भूख से दुःखित पर्वतों में रुकी हुई सेना को छोडके बादशाह के पास देहली को भगगया ९२॥९३॥

२०—तेनाथ दिल्लीश बलं पराजितं,
मेवाड सीम्न्ये व मुहुरणे कृतम् ।
स्थले स्थलेऽतो वसुवह्नि शैल भू,
संख्येऽब्दके शुच्य सितेनरे शुभे ॥९४॥

२१—दिल्लीश भास्वत्कुल सूर्य्ययोर्द्धृतम्,
सन्धिर्मिथोऽभूद्धि तदत्रवत्सरे ।
श्री भीमसिंहो लघु भाद्र पाण्डुरे,
दिल्लीश मागादजमेरुपत्तने ॥९५॥

(युग्मम)

भीमसिंह ने मेवाड़ की सीमामें जगह २ अनेक स्थानों में बादशाही फोज को बुरी तरह से हराया ।

इस लिए संवत् १७३८ वि० के आषाढ के शुक्लपक्ष मे महाराणा जयसिंहजी और दिल्लीपति यवन सम्राट् औरंगजेब मे शीघ्र ही संधि होगई, और इसी वर्ष के भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में भीमसिंह अजमेर मे बादशाह के पास पहुँच गये ॥९४॥ ॥९५॥

२२—तातोक्ति रीज्येति विचार्य्य चानुजं,
संस्थाप्य साम्राज्य पदेऽप्यथागतम् ।

भीमं हि सश्रुत्य चकार विस्मितो-
दिल्लीश्वरस्तस्य महासमादरम् ॥९६॥

अपने पिता की आज्ञा का आदर करके अपने छोटे भाई को मेवाड का समृद्ध साम्राज्य दे कर अपने पास आये हुए भीमसिंह को सुन कर बादशाह ने अचभा किया और बहुत आदर किया॥ ९६ ॥

बनेड़े के प्रधान इतिहास का आरंभ

२३—तस्मै बनेडाख्यमनन्त कण्टक,
दत्त्वा बृहद्राज्य मसङ्गमण्डलम् ।
चिह्नैः प्रचक्रे तमिला भृतामलं,
चोचाधिकारेण चतुः सहस्त्रिणः ॥९७॥

और उन को (बादशाह ने) अलग अलग मण्डलों से युक्त अत्यन्त विस्तृत ननण्टी बनेडे का राज्य देकर राज्य चिन्हों से विभूषित किया तथा चौहजारी का उच्चाधिकार देकर सन्मानित किया ॥ ९७ ॥

२४—युद्धेऽत्र वर्षे त्रिसहस्त्र वाहुजान्,
प्रायोध्य राष्ट्रान्वयजांश्च मेरते ।
तेषां कृती दिल्ल्यधिपस्य चोक्तितः,
स्येयेन सन्धि मिथ आशु तेन मन् ॥९८॥

इसी वर्ष बादशाह के कथनानुसार इन्होंने मेडते (मारवाड़)

में ३००० राठोड़ों को समझा कर उनके साथ बादशाह की शीघ्र ही सन्धि करवादी ॥ ९८ ॥

२५—दिल्लीश्वरेणाथ निमन्त्रितो द्रुतं,
देशे ततस्तं प्रति दक्षिणे ययौ ।
रक्षा-धुरां मन्त्रिषु नीतिमत्स्विह,
संस्थाप्य राष्ट्रस्य-भुजार्जितस्य सः ॥९९॥

जब बादशाह ने दक्षिण के लिए निमन्त्रण दिया तो अपने बाहुबल से प्राप्त किए हुए राज्य का भार चतुर और नीतिमान् मन्त्रियों को सौंप कर शीघ्रही उसके पास जा पहुँचे ॥ ९९ ॥

२६—तत्रारमेनं रणकर्कशान्खलान्,
जेतुं बृहत्सैन्य समन्वितान्परान् ।
दिल्लीश्वराज्ञाविफली कृतादरान्,
सम्प्रेषयामास तु दाक्षिणात्यकान् ॥१००॥

वहां पहुँचने पर बादशाह ने इनको युद्ध भूमि मे दृढ भारी सेना युक्त वीर मरहठो को जीतने के लिए भेज दिया, क्योंकि उन्होने बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन किया था ॥ १०० ॥

२७—जित्वाद्वैरीन्बहुशोऽतिदुर्जयान्,
संगृह्य तेभ्योऽभिहृतान्हयादिकान् ।
दिल्लीश्वरायाभिसमर्प्य ताँस्ततः,
प्रासीदसौ यातुमनाः पदं स्वकम् ॥१०१॥

वहाँ बहुत से अजेय मरहठे शत्रुओं को जीता और उनसे

वहुत से घोडे आदि छीन कर वादशाह को सौंपने के पश्चात् अपने देश को आने का विचार किया ॥ १०१ ॥

२८—दिल्लीश्वरस्तुष्टमनाः कृतादर,
राष्ट्रं प्रति स्व वहुमानपूर्वकम् ।
एवं नभोवेदहयेन्दुसंमिते,
प्रस्थापयामास सुसाधु वैक्रमे ॥१०२॥

इस कार्य मे वादशाह् वहुत सतुष्ट हुआ और अत्यन्त आदर पूर्वक उनको सवत १७४० विक्रमी मे अपने राज्य मे आने की आज्ञा दी ॥ १०२ ॥

२९—अत्रान्तरे अथाजिमहार्दनिर्भरं,
विज्ञप्तिपत्रं प्रणिपत्य सत्वरम् ।
दिल्लीश एन प्रजगाद जित्वर
प्राक् प्रेहि वूँदीं स्वपुर ततः परम् ॥१०३॥

इसी अवसर पर शाहजादा आजिम का भेजा हुआ प्रार्थना पत्र आया जिसे पढकर शीघ्र ही वादशाह ने विजयी भीमसिंहजी से कहाकि आप पहले वूँदी जाएँ फिर। वहा से अपने राज्य को ॥ १०३ ॥

३०—वूँदीछिप दुर्जनशालमाहवे,
निर्जित्य वूँदीमनिरुद्ध वर्म्मणः ।
देहीति संश्रुत्य वचोऽभि वन्द्य त,
वूँदी प्रतस्थे स च सेनया समम् ॥१०४॥

'वहां जाकर अनिरुद्ध के शत्रु दुर्जनशाल हाडा को युद्ध में परास्त करके बूँदी का राज्य अनिरुद्ध को दो' बादशाह की इस आज्ञा को सुन कर भीमसिहजी सेना सहित बूँदी को रवाना हो गये ॥ १०४ ॥

३१—शत्रुं दिधक्षोरनिरुद्धवर्म्मणः,
सम्पद्य भीमः प्रधने सहायकम् ।
प्रत्यर्थि-वर्गं प्रजघान दुर्ज्जयं,
भीमानुजो निर्जरसांपतेरिव ॥१०५॥

शत्रुओं का नाश चाहने वाले अनिरुद्ध की, युद्ध में भीमसिंहजी ने उसके शत्रुओं को नष्ट करके इस प्रकार सहायता की कि जिस प्रकार अर्जुन ने इन्द्र की की थी ॥ १०५ ॥

३२—निर्हृत्य बूंदीं द्विषतोऽप्यकंटकां,
दत्वाऽनिरुद्धस्य नृपस्य संस्कृताम् ।
संप्रार्थितः काँश्चिदुवास वासरान्,
तत्रैव पेदे स्वपुरं ततोऽर्चितः ॥१०६॥

इस प्रकार शत्रुसे छीन कर बूँदी का रमणीक अकंटक राज्य अनिरुद्ध को दिया और उसके प्रार्थना करने पर कुछ समय तक आदर पूर्वक वहां रहकर अपने राज्य को रवाना हुये ॥ १०६ ॥

३३—दृष्ट्वा स्वराज्यं बहु कण्टकान्वितं,
तावद्धि दुर्गाधिकृतं खलप्रियम् ।
हाडा जगत्सिहमनल्प विक्रमं,
व्यापाद्य दुर्गं प्रजहार सज्जितम् ॥१०७॥

वहा पहुँच कर अपने राज्य को विस्तृत कटकाकीर्ण देखा तो सबसे पहले दुर्गाध्यक्ष दुष्ट पराक्रमी जगतसिंह हाडा को मार कर उससे सुसज्जित गढ लेलिया ॥ १०७ ॥

३४--अन्यानपि स्तेय परांश्च कण्टकान्,
व्याहृत्य राष्ट्राखिल मण्डलेष्वथ ।
गुल्मान्निधायाश्वभय प्रघोषयत्
पुत्रान्यपिः स्वात्म भवान्निव प्रजाः ॥१०८॥

इसी प्रकार राज्य के समस्त खटों मे चोर लुटेरे आदि जो और कटक थे उन सब का नाश करके सर्वत्र रक्षक मडल (थाने) स्थापित किये और शान्ति स्थापित करके पुत्रो की तरह प्रजा का पालन करना आरभ किया ॥ १०८ ॥

३५--आसन्नृमण्योऽस्य रसेन्दु समिताः,
तास्वेव बवोर्यधिपस्य धीमतः ।
श्रीरूपसिंहस्य सुतातिसुव्रता,
प्रेष्ठा किलासीन्महिषीन्दुभानना ॥१०९॥

इनके सोलह राणिया थीं उनमें से बनोरी के रूपसिंहजी की लड़की पटराणी थी ॥ १०९ ॥

३६--सुतेस्म सैपा परमारवंशजा,
सौभाग्यसिंह त्वथ कीर्तिसिंहकम् ।
राज्ञी द्वितीया परतापवर्म्मणः,
श्रीदेलवाडाधिपतेरभूत्सुता ॥११०॥

इस परमारवंशोत्पन्न पटरानी के सौभाग्यसिंह और कीर्तिसिंह दो पुत्र हुये। इनकी दूसरी राणी देलवाड़ा के पति प्रतापसिंह की पुत्री थी ॥ ११०

३७—भीमस्य राज्ञी सुभगा तृतीयका,
राजावनी साऽज्जयराज वर्म्मणः ।
आसीज्झलायाधिपते स्तनूद्भवा,
तुर्याथ राज्ञी खलु येडरेचिनी ॥१११॥

३८—सासीच्छुभाङ्गी जगमाल वर्म्मणः
पुत्रीडरेशस्य ततस्तुपञ्चमी ।
राज्यस्य झालीतकि याहि सादड़ी-
नाथस्य सा मण्डलिकस्य पुत्रिका ॥११२॥
(युग्मम्)

भीमसिंहजी की तीसरी रागी झलाया के अधिपति अजय-सिंह की पुत्री थी। चौथी राणी इडरेचो ईडर के महाराज जगमाल सिंहजी की पुत्री थी तथा पांचवी राणी सादड़ी के स्वामी मंडलीक सिंहजी की पुत्री थी ॥१११॥११२॥

३९—झालीयमार्या तु खुमाणसिंहकं
सूतेस्म पश्चात्पृथुसिंहनामकम् ।
पष्ठ्यस्य या जोधपुरीति कामिनी,
चासीदुदेभानु मृगाधिपस्य सा ॥११३॥

४०—राज्ञो भणायाधिपतेस्तनूद्भवा,
१७३०
चास्यास्तु गर्भात्खगुणर्षिभूमिते ।

श्रीविक्रमीयेऽजयसिंह आदितः,
भीमात्मजानामजनीह चाग्रजः ॥११४॥
(युग्मम)

इस भाली राणी के सुमानसिंह और पृथुसिंह दो पुत्र हुये। छटी जोधपुरी राणी भगाय के राजा उदैभान की पुत्री थी, जिस के गर्भ में भीमसिंहजी के पाटवी राज कुमार अजयसिंह संवत् १७३० विक्रमी में जन्मे थे। ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

४१—अस्यां ततोऽब्देऽष्ट गुणाश्व भूमिते,
ऊर्जार्जुनेयाणमिते तिथौ शनौ।
श्रीसूर्यमल्लोऽप्यजनि द्वितीयको—
भीमात्मजानां गणना विधौ तुयः ॥११५॥

इसके पश्चात् इसी राणी के द्वितीय राजकुमार सूर्यमलजी सं १७३८ वि० के कार्तिक शुक्ल ५ भृगुवार को उत्पन्न हुये जो भीमसिंह जी के सब राजकुमारों में द्वितीय थे ॥ ११५ ॥

४२—चांपावती स्त्यथ सप्तमी शुभा,
यावापनेः साऽभयराज वर्म्मणः।
आसीत्सुतास्याः किल गर्भतोऽजनि,
श्रीमत्कुमारोऽर्जुनसिंहनाम भृत् ॥११६॥

इनकी सातवीं राणी चांपावती आवाके स्वामी अभयराजसिंह की पुत्री थी। इसके गर्भ से अर्जुनसिंह जन्मे थे ॥ ११६ ॥

४३—खीचीकुलोत्पन्नतनूस्तु याष्टमी,
सत्यव्रतासीच्छिवसिंह वर्म्मणः।

राघोगढदेशस्य सुतातिशोभना,
पौत्रीत्वियं गोकुलदास वर्म्मणः । ॥११७॥

आठवी खीचीराणी राघोगढ़ के पति गोकुलसिंह की पोती तथा शिवसिंह की पुत्री थी ॥ ११७ ॥

४४—भीमात्किलास्यां रणरङ्गदुर्ज्जयो-
श्रीलालसिंहोऽप्यथ तेजसिंहकः
जातौ सुतौ पुष्पकुमारिका ततः,
चन्द्राननासीत्कलधौत गात्रिका ॥११८॥

इस खीची राणीके शूरवीर लालसिंह और तेजसिंह दो राजकुमार तथा राज कुमारी सुवर्ण वर्णा पुष्प-कुमारी हुई ॥ ११८ ॥

४५—स्त्रीरत्नभूतां गुणगौरवान्वितां,
प्रादान्नृपस्तां सुविधानतः श्रुतेः ।
मरुर्वोश्वरायाऽजितसिंहवर्म्मणे,
वीराय राष्ट्रान्वयपद्मभास्वते ॥११९॥

स्त्रियों में रत्नस्वरूप गुणवती पुष्पकुमारी को भीमसिंहजी ने वेदोक्त विधान से राठोड़ कुल दिवाकर मरुधराधीश वीराग्रणी महाराज अजितसिंहजी को दी थी ॥ ११९ ॥

४६—साकं स्वपुत्र्या तमुदार्च्य सानुगं,
सद्यौतकं भूरि समर्प्य सन्मनाः ।
भूयः स्वदेशं प्रतियातुमिच्छुकं
प्रस्थापयामास बृहद्बलान्वितम् ॥१२०॥

प्रसन्नता पूर्वक अपनी पुत्री सहित मरुधराधीश का अत्यन्त सत्कार करके बहुत दहेज दिया और जाने की इच्छा प्रकट करने पर अनुचरों सहित आदर करके उनकी राजधानी को विदा कर दिया ॥ १२० ॥

४७—झाल्येव राज्ञी नवमीति चास्य या,
श्रीद्वारिकादास मृगाधिपस्य सा ।
श्रीदेलवाडाधिपतेः सुतात्मजा,
पुत्रीयमासीत्तु सुजानसिंहतः ॥१२१॥

इनकी नवमी झाली राणी देलवाडा के पति सुजानसिंह की पौत्री तथा द्वारिकादास की पुत्री थी ॥ १२१ ॥

४८—झालीत्वियं वै सुषुवे सुतावुभौ,
तावद्धि जैसिंहमनल्पविक्रमम् ।
युद्धप्रचण्डं कमनीयदर्शनं,
तत्र द्वितीय हरिसिंहनामकम् ॥१२२॥

इस झाली राणी ने युद्ध मे गर्जने वाले पराक्रमी और सुन्दर विजयसिंह तथा हरिसिंह नामी दो राजकुमारों को जन्म दिया ॥१२२॥

४९—राज्यस्य या सीदशमीडरेचिनी,
श्रीद्वारिकादासमृगाधिपस्य सा ।
पुत्री किलैमन्नगराचलापतेः,
पुत्रात्मजा चार्जुनसिंहवर्म्मणः ॥१२३॥

दशमी राणी ईडरेची येमन नगर के राना अर्जुनसिंह की पोती और द्वारिकादास की पुत्री थी ॥ १२३ ॥

५०—राज्ञ्यस्य खीचीकुलजेशसंख्यका,
वीरस्य सासीत्खलचीपुर प्रभोः ।
पुत्री शुभा श्रीहरिसिंहवर्म्मणः,
श्रीकर्णसिंहस्य सुतात्मजास्मृता ॥१२४॥

ग्यारहवीं खीची राणी खिलचीपुर के स्वामी कर्णसिंह की पौत्री तथा हरिसिंह की पुत्री थी ॥ १२४ ॥

५१—या द्वादशी हाड्यथ चास्य कामिनी,
श्रीविष्णुसिंहस्य महामही भुजः ।
बूंदीपतेः सा तनुजातिशोभना,
श्रीराजसिंहस्य बभूव पौत्रिका ॥१२५॥

बारहवीं राणी हाड़ी थी जो बूँदी नरेश राजसिंहजी की पौत्री तथा विष्णुसिंह की पुत्री थी ॥ १२५ ॥

५२—हाडी किलेयं सुपुवे सुतं शुभं,
वीरं हि जोरावरसिंहनामकम् ।
कान्तव्रतानां सुधुरंधरेह सा,
भूत्वा सती चानुगता प्रियं पतिम् ॥१२६॥

पतिव्रताओं में अग्रणी इस हाड़ी राणी ने बहादुर राजकुमार जोरावरसिंह को जन्म दिया और पश्चात् सती होकर पति के साथ दिव्य लोक को सिधारी ॥ १२६ ॥

५३—राज्ञ्यस्य हाडान्वयजा त्रयोदशी,
सासीत्सुता माधवसिंह वर्म्मणः ।

चन्द्रानना श्रीन्द्रगढाधिपस्य हि,
श्रीराजसिंहस्य सुतात्मजा स्मृता ॥१२७॥

इनकी तेरहवीं राणी भी हाडावंश की थी, जो इन्द्रगढ के भूपति माधवसिंह की पुत्री और राजसिंह की पौत्री थी ॥ १२७॥

५४—राज्यस्य यासीत्किल रत्नसंख्यका,
श्रीकर्णसिंहस्य महामही भुजः ।
सा वै विकानेरपतेस्तु पौत्रिका,
श्रीपद्मसिंहस्य शुभात्मजा स्मृता ॥१२८॥

चोदहवीं राणी विकानेर के महाराज कर्णसिंहजी की पौत्री तथा पद्मसिंहजी की सुपुत्री थी ॥ १२८ ॥

५५—सेयं विकानेर्यथ हेमगात्रिका,
सुतेस्म चानन्दकुमारिकां सुनाम् ।
श्रीयोद्धसिंहाय समर्चिताय ताम्,
बूंदी-वरायाभि ददौ सुभूषिताम् ॥१२९॥

इस राणी के सुवर्णाङ्गी आनन्द कुमारी उत्पन्न हुई जिस को सर्व आभरणों से विभूषित करके आदरपूर्वक बूँदी के महाराज जोधसिंहजी को प्रदान की ॥ १२९ ॥

५६—तत्रैव वापी त्वनयातिशोभना,
प्राकारि तस्यां कुलयोर्द्वयोर्यशः
अस्याः शिलापृष्ठगताक्षरालिभिः,
भित्तिस्थिताभिः सकल प्रकाश्यते ॥१३०॥

इसने बूँदी में एक अत्यन्त सुन्दर वापी, खुदवाई जिसमें लगे हुए शिलालेख से इसके पिता और पति दोनों के कुल का यश प्रकाशित होता है ॥ १३० ॥

५७—चौहानिका पूर्णसुधांशु भानना,
राज्यस्य या पञ्चदशी स्मृता हि सा ।
धर्म्माङ्गदस्यात्म भवातिसुव्रता,
रुक्माङ्गदस्यादियमस्य पौत्रिका ॥१३१॥

इनकी सौभाग्यवती पन्द्रहवीं राणी चौहान धर्म्माङ्गद की पुत्री तथा शत्रुओं के लिए यमराज के तुल्य प्रतापी रुक्माङ्गद की पौत्री थी ॥ १३१ ॥

५८—राज्यस्य या झाल्यथ षोडशी स्मृता,
सा वीरनारायणसिंह वर्म्मणः ।
आसीत्सुतेयं पतिदेवतापरा,
साध्वी पतिं चानुगतेति विश्रुता ॥१३२॥

इनकी सोलहवीं झाली राणी वीरनारायणसिंह की पुत्री थी जो पतिव्रत धर्म मे परायण होने के कारण सती होकर पति के साथ उत्तम लोक में जाकर प्रख्यात हुई ॥ १३२ ॥

५९—सर्णान्यपाकृत्य विधानतः श्रुतेः,
त्रिरप्येव पश्चाद्युवराज संयुतः ।
स्वामन्त्रितो वै यवनेश्वरेण सन्,
दिल्लीशमागात्सबलोमुदान्वितः ॥१३३॥

राजा भीमसिंहजी वेदोक्त रीति से देव, पितृ और मनुष्य इन तीन प्रकार के ऋण को दूर करके बादशाह का बुलावा आने पर प्रसन्नता पूर्वक, सेना और युवराज सहित (बादशाह) के पास दक्षिण मे चले गये ॥ १३३ ॥

५४—दिल्लीश्वरो भीमसुतं समादरा—
दाहूय चाज्ञापयतिस्म वीर हे ।
गत्वाशु वीजापुर भूपति स्त्वया,
व्यापादनीयः प्रधने स दुर्मदः ॥१३४॥

बादशाह ने भीमसिंहजी के युवराज अजबसिंह को अत्यन्त आदर से बुला कर आज्ञादी कि हे वीर ! तुम शीघ्र ही वीजापुर जा कर युद्ध मे वहाँ के नरेश का नाश करो ॥ १३४ ॥

५५—तत्रैत्य नीत्वारिबलं रणेक्षयं
निर्भिद्य दुर्गं द्रुतमेव दुर्जयम् ।
काले तदन्तर्गमनेऽतिदीर्घया
भिन्नः शतघ्न्यारिपुहस्तमुक्तया ॥१३५॥

५६—पेदे दिवं सोरिकुलाब्ज चन्द्रमाः,
श्रुत्वाद्भुतं कर्म सुतस्य सन्मनाः ।
भीमोऽपि सद्ज्ञान सुकोलसंस्थितः,
शोकाम्बुराशिं सुततार सत्वरम् ॥१३६॥

(युग्मम्)

इस आज्ञा के पाते ही वहाँ पहुँच कर युद्ध मे शत्रुओं का नाश करके बड़े भारी अजेयगढ को शीघ्र ही तोड दिया। जब गढ में

प्रवेश करने लगे तो शत्रुओं द्वारा चलाई हुई भारी तोप के प्रहार से आहत हो कर असमय मे ही स्वर्ग के यात्री हो गये। उस शत्रुकुल-रूपी कमलों को मुरझाने में चन्द्रकार्य-संपादक, पराक्रमी राजकुमार अजबसिंहका ऐसा अद्भुत कर्म सुन कर सद्विचार भीमसिंहजी को प्रसन्नता के साथ ही पुत्र वियोग का इतना भारी दुःख हुआ कि शोक समुद्र में निमग्न होने लगे परन्तु सद्-ज्ञान की नोका हाथ लग जाने से शीघ्र ही बच गये ॥ १३५॥१३६॥

५७—दिल्लीश्वरोऽभ्रेपु हयैकसंमिते,
वर्षेऽस्य शौर्य्यैः परितुष्टमानसः ।
अस्मै महत्पञ्चसहस्त्रिणः पदं,
सेनाधिपत्येन समंसमभ्यदात् ॥१३७॥

बादशाह ने भीमसिंह जी को पराक्रम के कार्यों से सन्तुष्ट होकर सं० १७७० वि० में पञ्चहजारी के उच्च-पद से संभूषित करके सेनापति का अधिकार प्रदान किया ॥१३७॥

५८—श्रीसूर्यमल्लं विनिधायदुर्ज्जयं,
सद्यौवराज्येजनताव न प्रियम् ।
दिक्संख्यकेष्वप्यनुजेषुतस्ययं,
सामन्त राज्याधिकृतास्त्वमीहते ॥१३८॥

राजा भीमसिंहजी ने प्रजा के रक्षण में तत्पर राजकुमार सूर्यमल जी को युवराज बना कर उनके दश छोटे भाइयों को इस प्रकार राज्य देकर सामन्त बना दिया ॥१३८॥

५९—खशोद राज्यम् प्रथमायतेष्वसौ,
राव्मालवेऽदाद्धि खुमाणवर्म्मणे ।
प्रादात्तृतीयाय महौजसेततो,
राज्य त्रिपृथ्वीहरयेसमुज्ज्वलम् ॥१३९॥
६०—अत्रैव पारोल्यभिधानकवद्दु,
ग्रामान्वित तेष्वथ पंचमायसः ।
राज्य नृपोदादमलाख्यक विजे,
सिंहायसौर्य्योदयये सुमालवे ॥१४०॥
(युग्मम्)

उन दशों में बडे खुमाणसिंह को मालवा देश मे खरशोद का राज्य दिया और तीसरे भाई पृथुसिंह को बहुत ग्रामो से युक्त पारोली का राज्य दिया। उस समय बडा मोगा और सीदडिया-वास भी इसी मे थे और पाँचवें राजकुमार विजयसिंह को मालवे मे अमला नामक उत्तम राज्य दिया ॥१३९।१४०॥

६१—भूपोष्टमायाथसुमालवेवरं,
वीरायजोरावर सिंहवर्मणे ।
राज्य वरदाख्यमदादशौततो,
वीरायराज्य नवमाय मालवे ॥१४१॥
६२—श्रीकीर्तिसिंहायददावकण्टक,
खेडावदाख्यं नयशौर्य्यसिन्धवे ॥

भीमात्मजाः स्वंस्वममी पडित्थकं,
भागं स्वदत्तं गुरुणा प्रपेदिरे ॥ १४२ ॥

(युग्मम)

इसके अनन्तर सूर्यमल्ल के आठवें अनुज वीर राजकुमार जोरावर सिंह को भी मालवे में बरडथ्या का उत्तर राज्य दिया और सूर्य्यमल्ल के नवमें अनुज कीर्तिसिंह को मालवे में खेड़ावदा का उत्तम राज्य दिया इस प्रकार छः राजकुमारों ने भीमसिंहजी के दिये हुए राज्य भागों को स्वीकार किया ॥ १४१ । १४२ ॥

६३—प्रागेवभागात्प्रययुस्त्रिविष्टपं,
शेषा स्तनस्वल्पदिनान्तरेनृपः ।
दिल्लीपतिं दक्षिण देशसंस्थितं,
संप्राप्यपश्चान्नवपड्दिनान्तरे ॥ १४३ ॥

६४—त्यक्त्वा शरीरं प्रययौदिवं त्विदं,
१७५२
वर्षेद्विवाणाश्व मही मितेध्रुवम् ।
शंवेतिथौश्रावणि कस्यमेचके ॥
वीराग्रणी भानुकुलाब्ज भास्करः ॥१४४॥

(युग्मम्)

शेष राजकुमार उक्त राज्य विभाग के पूर्व ही परलोकगामी हो गये थे । इस राज्य वितरण के कुछ समय अनन्तर दिल्लीश्वर के पास दक्षिण में पहुँचने पर ५४ चौवन दिन ही के पश्चात् संवत् १७५२ विक्रमी के श्रावण कृष्ण १४ चतुर्दशी के दिन सूर्य कुल कमल दिवाकर भीमसिंह जी नाशवान भौतिक शरीर

को छोड कर सदा के लिए दिव्य लोक को प्रयाण कर गये ॥ १४३ । १४४ ॥

१७१०
६५—ख्वेन्द्रश्वगोत्रा प्रमितेसुवत्सरे,
पौपस्य कृष्णे हरिवासरेतिथौ ॥
श्रीवेदलेशस्यसुतासुकुक्षितो,
भीमोऽधिजज्ञे द्विपतांकुलांतकः ॥१४५॥

शत्रुकुल नाशक भीमसिंह जी ने सवत् १७१० विक्रमी के पौप कृष्णा ११ एकादशी शोमवार को वेदलाधीश की पुत्री के गर्भ से जन्म लिया था ॥१४५॥

६६—इत्थ हि भीमस्यभवात्ययाङ्कित,
किञ्चिचरित्रं गदित सुनिश्चितम् ॥
भीमेरि वशाब्जविधौदिव गते,
श्रीसूर्यमल्लः शुशुभे नृपासने ॥ १४६ ॥

इस प्रकार भीमसिंह जी का किंचित् निश्चित जीवन चरित्र जन्म मृत्यु समय सहित कहा। जब ये स्वर्ग को प्राप्त हो गये तो इनके राज्य सिंहासन को सूर्य्यमल्लजी ने सुशोभित किया ॥१४६॥

(इति बनेडा राज्य सस्थापक प्रथम भूपति भीमसिंह चरित्र नाम द्वितीय पर्व समाप्तम्)

द्वितीय पर्व ।

॥ इति प्रथमो भाग समाप्त ॥

तृतीय पर्व
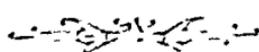
(२) राजा सूर्यमल्ल

(सं० १७५२-१७६४ वि०)

१—दत्तं नरेन्द्रो गुरुणातिनिर्मलं,
राज्यं नवं प्राप्य नवेन्दुवद्बभौ ।
संवर्द्धयन् प्रेमरसेन चानुजान्,
सर्वाः प्रजाः संपपिरात्मजानिव ॥१४७॥

सूर्यमल्लजी पिता के नवीन राज्य को पाकर शुक्ल प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए और प्रेम से अपने छोटे भाइयों को वढ़ाते हुये पुत्रवत् प्रजा की रत्ता करने लगे ॥१४७॥

२—सर्वाः प्रजाः श्रीयवनेश्वरोऽपि तम्,
दृष्ट्वा नृपेन्द्रं नयशौर्य्यसागरम् ।
मानानुकम्पौकसमाजिदुर्ज्जयम्,
भीमं नृपालंतुविसस्मरुद्रुतम् ॥१४८॥

सब प्रजा और वादशाह सूर्यमल्लजी को न्याय और पराक्रम के समुद्र, मान तथा दया का घर और युद्ध में अजेय देख कर भीमसिंहजी को शीघ्र ही भूल गये ॥१४८॥

१७५७
३—सप्तेपुसप्तेन्दुमितेऽथ वत्सरे,
हत्वा सितारा नगरस्य सगरे ।
वीराननेकानपि रोम हर्पणे,
तृप्तिं न लेभे छिपतां नियर्हणे ॥१४६॥

इन्होंने सवत् १७५७ वि० मे सितारा के रोमाचकारी भयानक युद्ध मे अनेक वीरो का सहार किया तो भी युद्ध से तृप्ति नहीं हुई ॥१४९॥

४—गाढप्रहारैर्द्धिपतां हितव्रणे,
आसीद्विसज्ञो रविवशभूपणः ।
तच्छौर्यतुष्टो यवनेश्वरोऽप्यदात्,
तस्मै पद चाब्धिसहस्रिणस्तदा ॥१५०॥

इस युद्ध मे शत्रुओं के अधिक प्रहारों से सूर्यकुलावतस सूर्यमल्लजी को मूर्छा आ गई थी तो भी रण से विमुख नहीं हुए, इस वहादुरी से सतुष्ट होकर वादशाह ने इनको चौहजारी के उच्च पद से अलकृत किया ॥१५०॥

५—वाघेल्यभूच्छ्रीमहिपी किलास्य या,
श्रीभावसिंहस्य तु सा सुपुत्रिका ।
गोत्रापतेर्वांधुगढाधिपस्य सा,
चानोपसिंहस्य सुतात्मजा शुभा ॥१५१॥

इनकी पट्टराणी वाघेली थी जो वाधुगढ के राजा अनोपसिंह की पोती तथा भावसिंह की पुत्री थी ॥१५१॥

६—प्राकारि वाप्यप्यनयात्र पत्तनात्,
या दक्षिणस्यां सरशस्तटे परे ।
तस्यास्तु नाम्न्येव परोजिराजकी,
शब्दोस्ति 'वायी' निनदाद्धि संप्रति ॥१५२॥

इस राणी ने वनेड़े में राम सरोवर के दक्षिण तट पर उत्तम वापी बनवाई, जो बाईजीराज की वापी के नाम से प्रसिद्ध है ॥१५२॥

७—अस्यास्तु वाप्याः प्रमुखे शिवालयोऽ-
कार्य्येव रम्योति दृढोनयोछ्रितः ।
वायीजिराजेति पदाधिकारिणी,
ख्यातेयमत्रैव गते दिवंधवे ॥१५३॥

इस वापी के सम्मुख अत्यन्त रमणीक उन्नत शिवालय भी इसी ने बनवाया था । पतिदेव के परलोकगामी होने पर यह बाई-जी राज के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१५३॥

८—राज्ञी द्वितीयास्य भटान्यभूत्तरां,
यासीत्सुता सामरसिंहवर्म्मणः ।
श्रीगोपतेर्जैशलमेर्वधिप्रभोः,
पौत्री तु राज्ञः सवलाख्यकस्य वा ॥१५४॥

सूर्य्यमलजी की दूसरी राणी भटयाणीजी थी जो जैसलमेर के महाराज अमरसिंह की पुत्री तथा सवलसिंह की पौत्री थी ॥१५४॥

९—सत्यव्रतेय पतिदेवतोत्तमा,
चित्त तु पत्युश्चरणारविन्दयोः ।
गाढंनिधायाथ कृतात्मसत्क्रिया,
वह्नौ प्रविश्यानुगता पतिं दिवम् ॥१५५॥

यह पतिव्रता देवी अपने उत्तम पतिदेव के चरणों में दृढ ध्यान लगाकर पवित्रा चरण पूर्वक अग्नि-प्रवेश करके पति के साथ स्वर्ग मे गई ॥१५५॥

१०—राज्ञी तृतीयास्य च येडरेचिनी,
चन्द्रानना श्रीजगमालवर्म्मणः ।
सा श्रीडरेशस्य बभूव पुत्रिका,
श्रीशामसिंहस्य तु पौत्रिका शुभा ॥१५६॥

इनकी तीसरी राणी ईडरेचिनी ईडर के भूपति श्यामसिंह की पोती तथा जगमालसिंह की पुत्री थी ॥१५६॥

१७ ८
११—वर्षेऽष्टबाणाश्वकुसंमिते शनौ,
राधार्जुनेऽश्व प्रमिते तिथौ शुभे ।
अस्याः सुकुक्षेः सुलतान केसरी,
श्रीभीमवंशाब्जदिवाकरोऽजनि ॥१५७॥

इस की पवित्र कुक्षि से स० १७५८ वि० के वैशाख शुक्ला ७ शनिवार के दिन श्रीभीमसिंहजी के कुल कमल के सूर्य राजा सुलतान सिंहजी ने जन्म लिया था ॥१५७॥

१२—दिल्लीश्वरो बाहुरशाह आत्मनः,
शौर्य्योद्धतं भ्रातरमुग्रशासनः ।
हन्तुं किलैने न समन्वितो रणे-
गात्कामवक्ष्मं सबलोऽति भीषणे ॥१५८॥

दिल्ली पति मुगल सम्राट् बहादुरशाह अपने छोटे भाई कामवक्ष को वध करने के लिये भीषण युद्ध में इनको साथ ले गया था ॥१५८॥

१३—घोरेऽन्नृते तत्र भटेषु सेनयोः,
वृत्ते रणेऽन्योन्यजिघांसयोभयोः ।
दिल्लीश्वरारी रविवंशकेतुना,
भिन्नोह्यनेनेह महीभुजासिना ॥१५६॥

वहां एक दूसरे के वध की इच्छा से जब इन दोनों भाइयों की सेना में घोर अनृत युद्ध होने लगा तो इस रविवंशावतंस राजा सूर्यमल्ल जी ने कामवक्ष को अपने खड्ग से आहत किया ॥ १५९ ॥

१४—मूर्छान्नतत्याज दिनत्रयेनिजं.
देहं जहौ तद्यवनेश्वरानुजः ।
इत्थं तमालोक्य नितान्तमूर्च्छितं,
तत्पक्षगा वीरधुरन्धरा द्रुतम् ॥१६०॥

१५—संघी प्रभूयैनमनल्पविक्रमम्,
संवेष्टयित्वापि नरेन्द्रसत्तमम् ।

हन्तु न शेकुर्हयसंस्थित वरान्,
सर्वांश्चरन्त तरसासिमण्डलान् ॥१६१॥
(युग्मम)

कामनत्त के इनकी तलवार की ऐसी चोट पहुँची कि फिर मूर्छा से नहीं उठा उसी दिन के अन्त में शरीर छोड़ दिया। इस प्रकार उसे मरणासन्न देख कर उसकी सेना के वीरों ने शीघ्र ही एकत्रित होकर अत्यन्त पराक्रमी, अश्वारोही सूर्यमल्ल जी को चारों ओर से घेर लिया, परन्तु उनका खड्ग मण्डल ऐसी तीव्र गति से नाच रहा था कि उनके मारने के लिये सहसा कोई भी समीप न जा सका ॥१६०।१६१॥

१६—निघ्नन्भटाँ स्तीक्ष्ण तरेण चासिना,
युद्धेबभौ वैयमराडिवापरः।
देवासुरस्ये वच रोमहर्षणे,
हत्वारिपूँस्तत्रसहस्रशोरणे ॥१६२॥

१५६४
१७—नाक गतो वेद रसाश्वभूमिते
श्रीविक्रमाब्देतुविहाय मन्दिरे।
प्रेष्ठ स्वराल खलु सप्त हायन,
बालार्क दीप्तिं कमनीय दर्शनम् ॥१६३॥
(युग्मम)

अपनी तीक्ष्ण तलवार से शत्रुओं का नाश करते हुए ये यमराज की तरह सुशोभित हुए और इनके देवासुर संग्राम तुल्य

रोमाञ्चकारी रौद्र समराँगण में हज़ारों शत्रुओं का नाश करके संवत् १७६४ विक्रमी में अपने सुन्दर बाल सूर्यवत तेजस्वी सप्त-वर्षीय प्रिय राजकुमार सुलतानसिंह को छोड़ कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये ॥१६२।१६३॥

१८—अस्मिन्रणेवृद्ध पितामहस्यमे,
विद्धद्वराग्रस्य: प्रपितान्नृपप्रिय: ।
आसीद्धि संगेस्यमहामहीभृतो,
तोलोकिते नाहवमेतदद्भुतम् ॥१६४॥

राजा सूर्यमल्लजी के कृपा पात्र विद्धद्वर ग्रन्थकर्ता के प्रपिता (परदादे) के परदादा इस संग्राम में मङ्ग थे अतएव उसने इस महा संग्राम को प्रत्यक्ष्य देखा था ॥१६४॥

१६—तातास्यतस्तत्तनयेनयच्छ्रुतम्,
वृत्तान्तमस्यप्रधनस्य हृद्यकम् ।
सोप्याह कृत्स्नं स्वसुतायतच्छुभम्,
तेनापि तत् संगदितंस्वसूनवे ॥१६५॥

उसके पुत्र ने इस मनोहारी संग्राम के वृत्तान्त को अपने पिता से श्रवण किया और उसने तथा उसके पुत्र ने भी अपनेपुत्र आदि को कहा ॥१६५॥

२०—एवं क्रमासं सुधियां मनोहरं,
मत्पूर्वजासम्यगिदं विदुर्जना: ।

तन्मागधीयेसुपुरातनेखिद,
दन्दृश्यते वीर मनोभिरजकम् ॥१६६॥

इस प्रकार उपरोक्त ऐतिहासिक वृत्तान्त को मेरे पूर्वज सम्यक् रीति से जानते हैं और प्राचीन मागधीय पुराणों में भी इसी प्रकार विस्तार के साथ लिखा हुवा है ॥१६६॥

इति तृतीय पर्व समाप्त ।
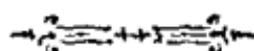
चतुर्थ-पर्व

॥३॥ राजा सुलतानसिंह

(सं० १७६४-१७६० वि०)

१—तद्भृत्यवर्गोप्यथ बालभूपतिं,
तं त्वाशु निन्ये यवनेश्वरान्तिकम् ।
दिल्यामुवाचेति समीक्ष्य तं शिशुं,
'प्रेष्ठेहि राजन् सुलतान मित्रज' ॥ १६७॥

इस बाल नृपति सुलतानसिंह को उनके मंत्री लोग बादशाह के पास दिल्ली ले गये तो बादशाह ने देख कर प्रेमपूर्वक इस प्रकार आदर दिया कि 'ए मेरे मित्र के पुत्र अति प्रिय सुलतान-सिह मेरे पास आओ ॥१६७॥

२—प्रेम्णा स हर्म्ये यवनेश्वरस्तदा,
नीत्वार्भकक्रीडनकैस्तु तं मुदा ।
संतर्प्य संस्कृत्य महार्घ भूषणैः,
मित्रात्मजं लालयतिस्म सादरम् ॥१६८॥

बादशाह इस मित्र पुत्र को प्रेम से महल में ले गया और बालकों के सुंदर खिलौनों से संतुष्ट करके तथा अत्यन्त भारी

आभूषणों से समलङ्कृत करके आदर पूर्वक पालन पोषण किया ॥१६८॥

३—बाल्येऽस्य बालावनिपस्य शासने,
कृत्स्नव्ययार्थं निखिलार्थ साधने।
दत्वा प्रदेशाञ्छ्रुति सख्यकानवरान्,
भृत्याविना वै वलिनालपभूधरान् ॥१६६॥

इस बालक राजा के सपूर्ण व्यय के लिए बिना सेवा के रमणीक अच्छी आय के चार प्रान्त खड (परगने) दे दिये (शेप ले लिये) ॥१६९॥

४—आगन्तु काय जननी प्रति द्रुतम्,
सम्राड् विदित्वार्भकमादिदेश तम्।
सनम्य सम्राजमनार्यभास्करम्,
भैस्यात्मजः सम्प्रययौ स्वमन्दिरम् ॥१७०॥

बादशाह ने इन को इच्छा जान कर, अपनी माता के पास जाने की आज्ञा दे दी तो ये यवनो के सूर्य मुगल सम्राट् बहादुर शाह को सलाम करके अपने भवन को चले आये ॥१७०॥

५—बालत्व एवास्य महीपतेस्तु हा,
कालेन सम्राट् निहतोऽरिणारिहा।
सम्राड् वधो बाधक उन्ननेरभूद्,
भीमार्जितायाः अयमस्य शासने ॥१७१॥

अत्यन्त दु ख की बात है कि सुल्तान सिंह की बाल्यावस्था ही मे बहादुरशाह बादशाह कालग्रस्त हो गया। इस की मृत्यु

भीमसिंहजी की उपार्जित की हुई राज्योन्नति की बाधक हुई। (यदि सुल्तानसिंहजी के राज्याभिषेक तक बहादुरशाह जीवित रहता तो वह अवश्य अपने मित्र पुत्र को पंच हजारी का पद देकर अन्य परगने भी दे देता; क्योंकि वह इनके पूर्वजों की वीरता और पूर्ण सेवा का कृतज्ञ था) ॥१७१॥

६—दिल्लीश्वरः फर्रुखसैयराख्यको ,
१७७१
वर्षेथ भूससिंहयेन्दुसंमिते ।
लब्ध्वेनमाजानुकरं बलार्णवं,
राष्ट्रप्रगुप्त्यै तु नयाय जित्वरम् ॥१७२॥

७—औरंगबादाख्य सुपत्तने वरे,
नीत्वा महान्तं रविवंशभूषणम् ।
न्यायासने सन्नियुयोजमार्द्धिते,
रक्षोदिशोर्वीपतिभिः समर्चिते ॥१७३॥
(युग्मम्)

फर्रुखसियर बादशाह सम्वत् १७७१ विक्रमी में विजयी और बलवान् सुलतानसिंहजी को दक्षिण में ले गया और न्याय के लिए दक्षिण देश के भूपालों से समर्चित सम्पत्तियुक्त औरंगाबाद शहर में न्यायाध्यक्ष के सिंहासन पर नियुक्त कर दिया ॥ १७२॥१७३॥

८—तत्रास्य नीत्याः प्रबलप्रभावतः,
कश्चिद्धि कश्चिन्न शशाक बाधितुम् ।

राष्ट्रप्रबन्धेऽस्य विशालतां धियः,
दृष्ट्वा प्रचण्ड प्रधनेऽपि विक्रमम् ॥१७४॥
९—सोलापुरस्यैनमथाधिशाशने,
१७७४
वर्षेहि वेदाश्वमुनीन्दुसमिते ।
सतुष्टचेता यवनेश्वरोद्रुत,
सस्थापयामास बृहद्‌बलान्वितम् ॥१७५॥
(युग्मम्)

वहा इनकी राजनीति तथा प्रबल प्रताप से कोई किसी को भी बाधा नहीं पहुँचा सका इसलिए राज्यप्रबन्ध में विशाल बुद्धि-मत्ता तथा रणाङ्गण मे पराक्रम देख कर स० १७७४ वि० मे बादशाह ने सतुष्ट हो कर भारी सेना के साथ इन को सोलापुर का शासक नियुक्त कर दिया ॥१७४॥१७५॥

१०—दिल्लीश्वरे मामदशाहनामके,
दिल्ल्यां प्रशासत्यपि दक्षिणापथम् ।
आनर्मदातीरमकण्टक महा-
राष्ट्राः प्रजह्रुरण्दुर्म्मदास्तदा ॥१७६॥

फर्रुखसियर के पश्चात् जब महम्मदशाह बादशाह हुआ तो उसके समय में सुरम्य नर्मदा नदी तक के दक्षिण देश पर प्रबल मरहठो ने अधिकार कर लिया ॥१७६॥

१७७१
११—नन्दाश्वसप्तेन्दुमितेऽथवत्सरे,
दिल्लीश्वर प्राप्य निवेद्य चाखिलाम् ।

वार्त्तां ततस्तस्य निदेशतो मुदा,

यातुं स्वराष्ट्रं हि मनो दधे तदा ॥१७७॥

इस पूर्वोक्त वृत्तान्त को बादशाह से निवेदन करके राजा सुलतान सिंह सम्वत् १७७९ विक्रमिमें अपने देश में चले आये ॥१७७॥

१२—झालीति चासीन्महिषी किलास्यया,

सा देलवाडाधिपते स्तनूद्भवा ।

श्रीमानसिंहस्य तथातिवत्सला,

श्रीसज्जसिंहस्य सुतात्मजा स्मृता ॥१७८॥

इनकी राणी झाली देलवाड़ा के पति मानसिंह की प्यारी पुत्री तथा सज्जसिंह की पौत्री थी ॥१७८॥

१३—चौहानिका या सुभगा द्वितीयका,

राज्ञस्य सासीत् खलु रिच्छडापतेः ।

श्रीसज्जसिंहस्य सुतात्मजा विजे,

सिंहस्य चार्यातनुजेति विश्रुता ॥१७९॥

इनकी दूसरी सौभाग्यवती राणी चौहानिका थी, जो रीछड़ा के ठाकुर विजयसिंह की पुत्री तथा सज्जसिंह की पोती थी ॥१७९॥

१४—सूतेस्म सा मानकुमारिकामियं,

चन्द्राननां पद्मविशाललोचनाम् ।

तामेकदा प्रेक्ष्य शिवार्चने रतां,

ज्ञात्वा वराहांन्नृपतिर्व्यचिन्तयत् ॥१८०॥

इस राणी के गर्भ में चन्द्रमुखी मानकुमारी का जन्म हुआ। एक समय गौरी की पूजा में संलग्न मानकुमारी को देख विवाह के योग्य समझ कर राजा योग्य वर की चिंता करने लगे ॥१८०॥

१५—वीराय कस्मै प्रददामि भूभृते,
स्त्रीरत्नभूतां खलु कन्यकामिमाम्।
इत्थं मुहुः संपरिचिन्त्य चेतसा,
प्रादाद्धरायाभयसिंहवर्म्मणे ॥ १८१ ॥

'स्त्रियों में रत्नतुल्य इस कन्या को मैं किस वीर राजा को दूँ" इस प्रकार मन में बार बार सोच कर श्री अभयसिंह जी के साथ विवाह कर दिया ॥१८१॥

१६—रामाय सीतां जनकः कपर्दिने,
गौरीं नगेशः प्रददौ यथा मुदा।
मर्व्वीश्वरायापरदत्तनाशिने,
श्रीमद्नेडेस इमां तथाभ्यदात् ॥ १८२ ॥

जिस प्रकार जनकजी ने सीता को रामचन्द्रजी के और ... ने पार्वती को शंकर के अर्पण किया, उसी प्रकार ... धिपति ने इसको वीर मरुधराधीश अभयसिंहजी के अर्पण किया ॥ १८२॥

१७—अस्यास्तु पाणिग्रहणे हि मण्डपे,
मर्व्वीश्वरेणैत्य कृते हि तत्क्षणे।

दैवादकस्माद्भवन्महीभृतो,
मृत्युर्वनेडाधिपतेरनिष्टदा ॥ १८३ ॥

मरुधराधीश जिस समय मंडप में इसका पाणि-ग्रहण कर रहे थे उस समय अकस्मात् वनेडाधीश की दुःखप्रद मृत्यु हो गई ॥१८३॥

१८—श्रीकन्यकादानमतोऽत्रधर्म्मतो-
राज्ञोऽस्य पूज्येन कृतं पुरोधसा ।
मर्व्वीश्वरेणापि महामहीभुजा,
न ज्ञातमेतस्य वरेण कारणम् ॥१८४॥

इस कारण राजा सुलतानसिंहजी के पूज्य पुरोहित ही ने विधि पूर्वक कन्यादान किया; उस समय इस रहस्य को मरुधराधीश अभयसिंहजी भी नहीं जान सके ॥१८४॥

१९—वध्वाखिलं यच्छिविरे निवेदितम्,
राजाधिराजाय वराय चादितः ।
श्रुत्वाखिलं सोपि तया समन्वित,
आगत्य दुर्गे द्रुतमादिदेशह ॥ १८५ ॥

जब मानकुमारी ने डेरे में पहुँचने पर अपने पिता का अनिष्ट समाचार अभयसिंहजी को सुनाया तो वे उसको ले कर किले में आये और निम्नांकित आज्ञा दी ॥ १८५॥

२०—भूपस्य शीघ्रं खलु पारलौकिकम्,
कृत्यं कुरुध्वं त्विति सर्व सेवकान् ।

आश्वास्य पश्चान्नृपजं नृपोत्तमः,
संप्रार्थितः कॉश्चिदुवास वासरान् ॥१८६॥

सर्व सचिवों को कहा 'नृपाल की शीघ्र ही पारलौकिक क्रिया करो।' पीछे से राजकुमार को आश्वासन दे कर प्रार्थना करने पर कुछ दिन वे यहाँ ही रहे ॥१८६॥

२१—दुर्गंस्थितं यन्नगरान्तिके गिरौ,
तेनाङ्कितं वीर महीभुजैवतत् ।
सम्राडपि प्रार्थनया मरुप्रभो,
स्तत्प्रक्रमाज्ञां प्रददौ महाविभोः ॥१८७॥

जो नगर के पास पर्वत पर गढ है उसका नकशा (मान-चित्र) मरुधराधीश ने बना कर बादशाह मुहम्मदशाह से स्वीकृति माँगी तो उसने शीघ्र ही इस गढ के बनवाने की आज्ञा दे दी ॥१८७॥

२२—पश्चात् स्वनाम्ना समयान्तरेऽल्पके,
श्रीराजपुत्र्या त्वनया चतुर्भुजम् ।
श्रीमानकुण्ड समकारि सुन्दरम्,
प्राग्गोपुरस्याभिमुखं सुभ्रस्थले ॥१८८॥

कुछ समय बाद इसी मानकुमारी ने इस नगर के पूर्वी द्वार के सामने अत्यन्त सुन्दर अपने नाम युक्त चौकोर कुण्ड बनवाया जिसको श्रीमानकुण्ड कहते हैं ॥१८८॥

२३—सोपान पङ्क्त्या परितोऽभिशोभितम्,
शिल्प बनेडोद्भवशिल्पिनां शुभम् ।

कुण्डं त्विदं ख्यापयदेवतिष्ठति,
पुत्र्या वनेडाधिपतेर्यशोऽमलम् ॥१८९॥

चारों ओर से सीढ़ियों से मण्डित यह 'कुण्ड वनेडा के प्राचीन शिलपकार तथा मानकुमारी के यश को अब तक दृढ़ता से प्रकाशित कर रहा है ॥१८९॥

२४—राज्ञी तृतीयास्य भदोरणीति या,
गोपालसिंहस्य भदावर प्रभोः ।
पुत्री शुभा सा पतिदेवता तथा,
कल्याणसिंहस्य सुतात्मजा मता ॥१९०॥

राजा सुलतानसिंह की तीसरी राणी भदावर के राजा गोपालसिंह की पुत्री तथा कल्याणसिंह की पोती थी ॥१९०॥

२५—अस्यां सुता रूपकुमारिकाख्यका,
जज्ञे पिता तां प्रददौ सुसंस्कृताम् ।
श्रीवख्तसिंहाय रणारि मर्दिने,
नागोरनाथाय कृतान्तमूर्त्तये ॥१९१॥

इस राणी की कुक्षि से राजकुमारी रूपकुमारी का जन्म हुआ जिसको राजा सुलतानसिंह ने विधि पूर्वक, युद्ध के समय शत्रु का नाश करने में यमराज तुल्य नागोर के नृपति श्रीवख्तसिंह को प्रदान की ॥१९१॥

२६—राज्ञी चतुर्थी पतिदेवतास्य या,
राजावतीति प्रथितेन्दुभानना ।

सासीत् सुता श्रीकुशलेन्द्रवर्म्मणः,
पौत्री तथा श्रीगजसिंहवर्म्मणः ॥१६२॥

इनकी चौथी पतिव्रता राणी राजावती थी जो कुशलेन्द्र वर्मा की पुत्री तथा गजसिंह वर्मा की पौत्री थी ॥१९२॥

२७—तावत् सुताऽस्याः प्रबभूव गर्भत,
स्तस्याः शुभे नाम्नि कुमारिकारवः।
अन्ते प्रदत्तस्त्वजवध्वने मुदा,
पित्रा प्रजारञ्जन तत्परेणहि ॥१६३॥

इसके गर्भ से प्रथम जो कन्या जन्मी उसका नाम प्रजारञ्जक पिता ने अजबकुमारी रक्खा ॥१९३॥

७१८०
२८—वर्षेऽथ खाष्टाश्व कुसम्मिते बुधेऽ-
मायामिषे श्रीसिरदार सिंहकम्।
राजावतीय स्वसविष्ट सूर्यभं,
मानानुकम्पानय शौर्य्यसागरम् ॥ १६४ ॥

इसी राजावती राणी के गर्भ से सवत् १७८० वि० में आश्विन कृष्ण ३० बुधवार को मान, दया और शौर्य्य के समुद्र सूर्यसमान प्रतापी राजकुमार सिरदारसिंह ने जन्म लिया ॥१९४॥

२९—भ्राता वराहीं भगिनी निजामथ,
ढूंढारदेशाखिल भूप भूभुजे।
राजेश्वरायेश्वरसिंह वर्म्मणे,
श्रीजैपुरेशाय ददौ सुसंस्कृताम् ॥१६५॥

विवाह के योग्य होने पर अजबकुमारी को उसके भ्राता राजा सिरदारसिंह ने वेदोक्त विधान से ढूँढार देशाध्यक्ष, जैपुर के महाराज ईश्वरसिंह को प्रदान की ॥१९५॥

३०—अस्यायितोयं सचिवं हि यौतके,
भ्राता ददौ जैपुरपत्तनेऽथ सः ।
ढूँढारदेशाधिपतेः प्रसादतो,
लेभे प्रधानस्य पदं सुदुर्लभम् ॥१९६॥

इस राजकुमारी के दहेज मे भ्राता ने जिस मन्त्री को दिया था वह जैपुर में ढूँढाराधिपति महाराज ईश्वरीसिंह जी की कृपा से वहाँ के अत्यन्त दुर्लभ प्रधान मन्त्री के पद पर पहुँच गया ॥ १९६ ॥

३१—तेनैव मन्त्रिप्रवरेण धीमता,
श्रीजीवराजेन सुजन्मधारिणा ।
प्राकारि चात्रर्षभदेव मन्दिरम्,
अत्यद्भुतं त्र्युच्छिखरैः सुशोभितम् ॥१९७॥

उसी बुद्धिमान् जीवराज मन्त्री ने यहाँ अत्यन्त सुन्दर और उन्नत तीन शिखर वाला, श्रीऋषभ देवजी महाराज का अद्भुत मन्दिर बनवा कर अपना जन्म सफल किया ॥१९७॥

३२—अस्मिन्सुबिंबान्यमलानि सर्वथा,
सन्त्यद्भुतान्यादिजिनेश्वरस्य हि ।
नो दृष्टपूर्वाण्यथसिद्धिदान्यर-
मेकान्तभक्त्या खलु सेविनां नृणाम् ॥१९८॥

इस मन्दिर मे आदिजिनेश्वर के निर्मल, अद्भुत और अदृष्ट-पूर्व तथा एकान्त भक्तों को सिद्धि देने वाले ७ बिंब हैं ॥१९८॥

१८२८
३३—तेनाष्टवाहृष्टकुसम्मितेऽब्दके,
कार्य्यस्य चारम्भ इहाच्र्यवेदिना ।
तत्सूनवो मोहनराममुख्यकाः,
सपादयामासुरथास्य पूर्णताम् ॥१९९॥

जीवराज ने स० १८२८ वि० मे इस मदिर का आरम्भ किया था, पीछे से उसके सुपुत्र मोहनराम आदि ने पूर्ण बनवाया ॥१९९॥

१८४०
३४—खाब्ध्यष्टगोत्राप्रमितेऽथ वत्सरे,
जाता प्रतिष्ठाऽस्य विधानतोवरा ।
राधस्य शुक्ले गुणसम्मिते तिथौ,
हम्मीरसिंहे नृपतौ प्रशास्तरि ॥२००॥

इस मन्दिर की प्रतिष्ठा स० १८४० विक्रमी के वैशाख शुक्ला ३ को राजा हम्मीरसिंह के शासनकाल में शास्त्रोक्त विधि से करवाई गई थी ॥२००॥

३५—राज्य वनेडाख्यमिने प्रशासति,
चास्मिंस्तु दिल्ल्यॉ बहु पाप पाकतः ।
राज्योत्प्लवोऽभूदसकृन्नृपान्तकः,
साम्राज्यघाती जनताभिनाशकः ॥२०१॥

वनेड़ा के राजा सुलतानसिंह के शासनकाल में दिल्ली में बड़े बड़े राज्यविप्लव हुए; जो राष्ट्र, प्रजा और सम्राटों के विध्वंसक होकर उनके पूर्व-सञ्चित पाप का परिचय दे गये ॥२०१॥

३६—आसन् महाराष्ट्रबलैः प्रपीड़िताः,
देशाः कपोता इव श्येनधर्षिताः।
भान्तिस्म गेहा धनिनां विलुंठिता,
श्चोरैः कुवार्गा इव घर्म्मशोषिताः ॥२०२॥

मरहठों से देश में ऐसा आतंक छा गया जैसे बाज से कबूतर दुःखी होते हैं; और चोरों ने धनिकों के महल लूट कर इस प्रकार शोभा रहित कर दिये जिस प्रकार कि ग्रीष्म ऋतु तुच्छ नदियों को सुखाकर निर्जल तथा शोभा रहित कर देती है ॥२०२॥

३७—दिल्ल्यास्तुराष्ट्रे विविधानुपद्रवान्,
संप्रेक्ष्य देशेष्वखिलेषु दस्युभिः।
चौर्य्यैं कृतं प्रोन्नतमस्तकं तदा,
तेन प्रजार्त्तिः प्रदधावपारताम् ॥२०३॥

दिल्ली मण्डल मे इस प्रकार के अनेक उपद्रवों को देख कर सारे देश के चोरो ने अपना शिर उठाया जिससे प्रजा का कष्ट बहुत बढ़ गया ॥२०३॥

३८—त्यक्त्वाऽथदिल्लीं यवनेश्वराज्ञया,
सोऽप्यायययौ राष्ट्रमिदं स्वकं त्वितः।
प्रागेव मेदादिभिरेव दस्युभि-
रस्यापि राष्ट्रे कृतमुन्नतं शिरः ॥२०४॥

यह दशा देख कर बादशाह की आज्ञा लेके राजा सुलतान सिंह भी वहाँ से अपने देश को चले आये परन्तु यहाँ तो मेर आदि जाति के चोरों ने उनके आने के पहले ही उपद्रव मचा दिया था ॥२०४॥

३९—दण्डेन सम्यक् प्रबलेन तानरं,
संदम्य राष्ट्रे प्रततान सोऽभयम् ।
तुल्यं स्वपित्रा जनताः प्रमेनिरे,
शश्वन्स मेने तनयानिवैष ताः ॥२०५॥

उन सब डाकू और चोरों को भारी दंड देकर वश में करके शीघ्र ही सर्वत्र शान्ति स्थापित कर दी और प्रजा को पुत्रवत पालन करने लगे । प्रजा ने भी राजा सुलतानसिंह जी को पिता के तुल्य माना ॥२०५॥

१७९०
४०—अभ्राङ्कसप्तेन्दुमितेऽथवैक्रमे,
यातो दिवं हा ! सुलतानकेशरी ।
संपन्न राज्यं सिरदार केशरी,
दत्तं स्वपित्रा सुरराज चाधिकम् ॥२०६॥

अत्यन्त दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि राजा सुलतान सिंह सवत् १७९० विक्रमी में इस असार ससार को छोड़कर दिव्य-लोक वासी हो गये । उनके पश्चात् पिता के दिए हुए राज-सिंहासन को राजा सिरदारसिंह जी ने सुशोभित किया ॥२०६॥

॥ इति चतुर्थ पर्व समाप्त ॥

पंचम-पर्व

॥४॥ राजा सिरदार सिंह

(सं० १७६०-१८१५ वि०)

१—एनं प्रजारञ्जनतत्परं नय,
कारुण्य सिन्धुं कमनीय दर्शनम् ।
वीरं युवानं नयतंत्र कोविदं,
दृष्ट्वा ननन्दुर्लघुसप्रजाप्रजाः ॥२०७॥

प्रजा को प्रसन्न रखने मे तत्पर न्याय और दया का समुद्र नीति का पूर्ण ज्ञाता मनोहर मूर्त्ति वाले इस वीर युवान राजा को देख के आवाल वृद्ध समस्त प्रजा तत्काल आनन्दित हो गई ॥ २०७ ॥

१७९१
२—दिल्ल्यां कुगोस्वेन्दु मितेऽयमब्दके,
दिल्लीशमेतिस्म मुहम्मदाख्यकम् ।
तत्रास्यसो चीकर दाशुसादरं,
वालार्क कान्तेरसिवन्ध नादिकम् ॥२०८॥

यह राजा सिरदारसिंह विक्रमी सं० १७९१ वे में वादशाह

मुहम्मदशाह के पास दिल्ली में गया वहाँ बादशाह ने इस तेजस्वी राजा के तलवार-बँधी का विधान शीघ्र ही करा दिया ॥२०८॥

३—दत्वाततो दन्तिनमञ्जनाद्रिभ,
चार्वाण मस्मै शुभमुत्तमोत्तमम् ।
आगन्तु कामं स्वपद ससत्वरम्,
प्रस्थापयामास तदेनमर्कभम् ॥२०९॥

तदनन्तर बादशाह ने एक सुन्दर हाथी और एक उत्तमोत्तम अश्व देकर अपने राज्य को आने की इच्छावाले इस तेजस्वी राजा सिरदार सिंह को वहाँ से शीघ्र ही रवाना कर दिया ॥२०९॥

४—वेदाङ्क सप्तैकमितेथ वत्सरे,
मर्वीश्वरेणाभयसिंहवर्म्मणा ।
सार्धं पुनः सप्रजगेस्वकार्यतो,
दिल्ल्याम सौराज्य वनेस्वरान्तिकम् ॥२१०॥

इसके अनन्तर वि० १७९४ में मारवाड के महाराजा अभय सिंह के साथ यह फिर अपने कार्य के लिये बादशाह के पास दिल्ली में गये ॥२१०॥

५—कार्याणि सम्यङ् नवदुर्गकस्यया,
न्यारभकादीनि निवेद्यसादरम्,
स भ्राजईश्वायतदाययाचयम्,
लब्ध्वा तदाज्ञां तदुपक्रमेद्रुतम् ॥२११॥

नवीन दुर्ग के आरम्भ आदि जो जो कार्य्य थे वे सब बाद-

शाह के लिये निवेदन कर उन कार्यों के आरम्भ में बादशाह की आज्ञा को ले वहाँ से शीघ्र ही लौट आया ॥२११॥

६—अग्रेथराष्ट्रावनपद्धतेः परं,
राज्य प्रवृद्धयर्थं प्रचकारशोधनम् ।
दृष्ट्वाप्रबन्धं जनता प्रियंकर,
मा नन्दिनः सर्व इदं जनानवम् ॥२१२॥

वहाँ से आने के अनन्तर राज्य की वृद्धि के लिये राष्ट्र-रक्षा के प्रबन्ध का उत्तमता के साथ शोधन किया। प्रजा का परम हितकारी इस नवीन प्रबन्ध को देख के सर्व मनुष्य आनन्दित हो गये ॥२१२॥

७—ससाङ्क सप्तेन्दुमितेऽथवत्सरे,
राणा जगत्सिंहइहैव संगतम् ।
सन्धिसद्दानेन चकारकेशरि,
सिंहं हि संप्रेष्यसलुम्बरेश्वरम् ॥२१३॥

महाराणा जगत्सिंह जी ने सं० १७९७ वि० में सलूँबर के रावत केशरिसिंह को भेज कर राजा सरदारसिंह से सन्धि की। यह सन्धि बनेडे में ही हुई थी ॥२१३॥

८—सन्धाविहायं समभूद्धिनिश्चयो,
दिल्लीश दत्ताद्विषयादितोऽपरे ।
राज्ये प्रदत्तेऽभिनवेतु सेवनम्,
मेवाडरीत्या खलु संगृहीष्यति ॥२१४॥

इस सन्धि में यह निश्चय हुआ कि महाराणा बनेडाधीश को बादशाह के दिये हुए राज्य के अतिरिक्त अन्य नवीन राज्य देंगे तो वे मेवाड राज्य के नियमानुसार उनसे (बनेडाधीश से) सेवा (नोकरी) लेंगे ॥२१४॥

९—प्राक् तत्प्रदानाद्धि सहायता सदा,
कुर्वन् बनेडेऽपि घोर सङ्कटे ।
सस्थास्यते भूमिपलाञ्छनान्यथ,
छत्रं तथा सूर्य्यमुखीं च चामरे ॥२१५॥

१०—दिल्लीशदत्तान्यपराणि यान्यपि,
मेवाड नाथाभिमुखं समुद्वहन् ।
सर्वाणि नून रणवीर केशरी,
कार्य्ये बनेडाधिपतिः प्रलास्यति ॥२१६॥

(युग्मम्)

नवीन राज्य देने से पहले घोर सङ्कट पडने पर बनेडाधीश महाराणा की सहायता करेंगे और बादशाह के दिये हुए छत्र चँवरादि सपूर्ण राजचिह्नों को महाराणा के सम्मुख भी अवश्य काम में लावेंगे ॥२१५–२१६॥

११—श्रीमद्बनेडाधिपतिर्य्युदेपुरम्,
यर्ह्यागमिष्यत्यथमप्युदेपुरात् ।
दूर समागत्य सुमान पूर्वकम्,
सुस्वागत हिन्दुपतिश्चरिष्यति ॥२१७॥

जब बनेडाधिपति उदयपुर आवेंगे तब महाराणा भी नगर के बाहर आकर आदर पूर्वक उनका स्वागत करेंगे ॥२१७॥

१२—एवं हि सेनाशिविरस्थलाद्बहिः,
दूरं समागत्य तु तद्विधास्यति ।
नूनं वनेडेश इतो गमिष्यति,
राज्यं निजं तर्हि तदा विसर्जितुम् ॥२१८॥

१३—मेवाडराट्तद्भवनं प्रयास्यति,
स्वीकृत्य सन्धेर्नियमानिमाँस्थिरान् ।
श्रीमद्वनेडाधिपतिर्हि सत्वरं,
तेनैव सार्द्धं प्रयया उदेपुरम् ॥ २१९ ॥

(युग्मम्)

यदि कहीं दौरे के अवसर पर ऐसा प्रसङ्ग हुआ तो महाराणा डेरों से बाहर आकर वनेडेश का स्वागत करेंगे तथा वनेडाधिपति जब अपने राज्य को लौटेंगे तब महाराणा इनको विदा करने के लिए इनके स्थान पर आवेंगे । सन्धि के इन स्थिर नियमों को स्वीकार करके राजा सरदारसिंह सलूँवरेश केशरसिंह के साथ उदयपुर चले गये ॥२१८।२१९॥

१४—मेवाडनाथेन सुहार्दपूर्वकम्,
सुस्वागतं तस्य कृतं सुमानदम् ।
जाताः किलास्मिन्नियमास्तु ये दृढाः,
तिष्ठन्ति तेऽद्याप्यचलाः प्रतिष्ठिताः ॥२२०॥

मेवाड़नाथ महाराणा ने नियमानुसार प्रेम पूर्वक उनका स्वागत किया । इस संधि मे जो नियम स्थिर हुए थे वे अब भी ज्यो के त्यो अचल हैं ॥२२०॥

१८०९
१५—अङ्काभ्रवश्वञ्जमितेऽब्दवैक्रमे,
दुर्गं दृढं प्रक्रमतेस्म पर्वते।
राष्ट्रे प्रबन्धं बहुसमत नवं,
चक्रे प्रजानन्दकर खलार्त्तिदम् ॥२२१॥

इन्होंने स० १८०९ वि० के वैशाख शुक्ला ३ को इस पर्वतस्थ दुर्ग को बनवाना आरम्भ किया और बहु समति से प्रजा के हित के लिए नवीन प्रबन्ध भी किया जिससे दुष्ट लोग नियन्त्रित हुए ॥ २२१ ॥

१६—सर्वाश्चचन्दुर्जनता इहास्य तं,
दृष्ट्वा शशसुः खलु नीति कोविदाः।
स्तेनास्तु सामन्तजनेषु दुर्धियः,
स्वान्ते प्रदेहुस्त्वथ वैरिणोजनाः ॥२२२॥

इस नूतन प्रबन्ध को देख कर सब प्रजा प्रसन्न हो गई और नीति विशारदों ने बडी प्रशसा की, केवल चौर, दुष्ट प्रकृति के सामन्त और शत्रु लोग मन में दु खी हुए ॥२२२॥

१७—देशास्तदैवार्त्ततरा ह्युपद्रवै,
रासन्महाराष्ट्रकृतैरमानुषैः।
अत्रान्तरे केचन चक्रुरीर्षया,
भूपा मिथो द्रोहमिहापि दुर्नयाः ॥२२३॥

इसी अवसर पर मरहठों के अमानुषी उपद्रवो से सपूर्ण देश में हाहाकार मच गया था अत मेवाड में भी कुछ दुर्बुद्धि नरेशों ने परस्पर ईर्षा करके विरोध फैला दिया ॥२२३॥

१८—वागोरपोनाथ हरिर्मुधा स्वकं,
मेवाड़नाथा द्दरितो हि राष्ट्रकम् ।
त्यक्त्वा विदेशे विचरन्सुहृत्तमं,
स्वं प्रत्यगाच्छाहपुरेशमुत्तमम् ॥२२४॥

वागोर के अधिप महाराज नाथसिंह ने व्यर्थ ही महाराणा से डर के अपने राज्य को छोड़ दिया और विदेश में घूम घाम कर अपने मित्र शाहपुराधीश के पास गया ॥२२४॥

१९—उम्मेदसिंहोऽपि तमागतं प्रियं,
दत्वा सखायं स्वगृहे समाश्रयम् ।
आर्य्योंष्णरश्मेः सह तेन स प्रजा,
आरेभयालुण्ठितुमार्य्यवंशजाः ॥२२५॥

उन्होंने आये हुए अपने मित्र को आश्रय दिया और उसको साथ लेकर मेवाड़ की आर्य प्रजा को लूटना आरम्भ कर दिया ॥२२५॥

२०—संक्लिश्यमाना जनताः परैः स्वका,
उन्मत्तपालस्य वृकैरिवैडकाः ।
संश्रुत्य मेवाड़पतिश्चकार तं,
कोपं समित्रं प्रति शाहपुःपतिम् ॥२२६॥

उन्मत्त रक्षक की भेड़ें जिस प्रकार भेड़ियों से सताई जाती हैं उसी प्रकार अपनी प्रजा को शत्रुओं द्वारा कष्ट पाती हुई सुन कर मेवाड़ नाथ महाराणाजीने समित्र शाहपुरेश पर कोप किया ॥ २२६ ॥

२१—मेवाडगुप्त्यै रविवंशकेतुनाऽऽ-
ज्ञप्तोवनेडाधिपतिर्यशोमनाः ।
एनं समित्र प्रधने रणप्रिय,
निर्जित्य देश प्रचकार निर्भयम् ॥२२७॥

जब महाराणा ने मेवाड की रक्षा के लिए यशस्वी बनेडा-धीश को आज्ञा दी तो उन्होंने शीघ्र ही युद्ध में मित्र सहित शाहपुराधीश को परास्त करके देश में शान्ति स्थापित कर दी ॥ २२७ ॥

२२—तत्तसहृच्छाहपुरेश्वरस्तदा,
तस्थौश्वसन्नेनमवेद्य चाधिकम् ।
दृष्ट्वाथ दुर्गे कटिदघ्नवप्रके,
वास नवेऽस्याल्पबले द्रुत तदा ॥

२३—सभिद्य सामन्तजनान्प्रयत्नत,
स्तत्रैव सुप्तेसिरदारवर्म्मणि ।
कृत्वा बलेनाक्रमणं सुहृःसह-
मुम्मेदसिंहोऽस्य जहार दुर्गकम् ॥२२८॥२२९॥

(युग्मम्)

इस पराभव से सतप्त शाहपुरेश उस समय तो अपने को निर्बल समझ कर क्रोधी साप की तरह साम लेता हुआ चुपचाप बैठा रहा, किन्तु जिस समय बनेडाधिप कटि प्रमाण परकोट वाले नवीन गढ़ में स्वल्प सेना से निवास कर रहे थे, उस समय शीघ्र ही उनके सामन्तों को युक्ति से फोड़ कर रात्रि में सोते हुए राजा

सिरदार सिंह पर अचानक आक्रमण किया और गढ़ के विशेष भाग पर अधिकार कर लिया ॥२२८॥२२९॥

२४—भागं स तिष्ठन्नवशिष्टके दृढं,
कृत्स्नं किलोदन्तमिमं च सत्वरम् ।
संबोधयामास दिनेशवंशपं,
मेवाड़नाथं स निशम्य विस्मितः ॥२३०॥

राजा सिरदारसिंह ने अवशिष्ट भाग में दृढ़ता पूर्वक ठहर कर यह सब वृत्तान्त महाराणाजी के पास भेजा; जिसे सुन कर वे बहुत विस्मित हुए ॥ २३० ॥

२५—प्रत्युत्तरे प्राह वचस्त्विदं तदा,
राजेन्द्र शोकं जहिनो व्यथस्वभोः ।
दुर्गं द्विषा संप्रति मत्कृते हृतं,
निर्जित्य तत्तेप्रददाम्यरन्ततः ॥२३१॥

और उत्तर में कहलाया कि "हे राजेन्द्र ! आप चिन्ता न करें शत्रु ने आप के गढ़ को मेरे कारण छीना है (अर्थात् आप का गढ़ नहीं छीना मेरा छीना है) अतः उससे छीन कर शीघ्र ही आपके अर्पण करवा दूँगा ॥२३१॥

२६—उक्त्वेत्थमाश्वेवनिजं बलं दृढं,
सन्नह्य संप्रेषयतिस्म सत्वरम् ।
चम्वागमाच्छाहपुरेट् प्रकम्पित-
स्त्यक्त्वाथ दुर्गं प्रचकार विद्रवम् ॥२३२॥

यह कहला के शीघ्र ही अपनी वलिष्ठ सेना को सजा कर वनेडे भेज दी, सेना के आते ही भयभीत हो कर शाहपुरेश दुर्ग छोड कर भाग छूटा ॥ २३२ ॥

१८१३

२७—त्रीन्द्वष्टगोत्राप्रमितेऽब्दके शुभे,
माघेऽवलक्ते सुदले शिवा तिथौ ।
दुर्गं विहायेदमितोऽहिसत्वर-
मुम्मेदसिंहेन कृत पलायनम् ॥ २३३ ॥

यह पलायन उम्मेदसिंह ने स० १८१३ विक्रमी के माघ शुक्ला तृतीया को किया था ॥ २३३॥

२८—ज्येष्ठाऽस्य राज्ञी नरूकीतिविश्रुता,
पुत्रीहिसा दौलतसिंह वर्म्मणः ।
ख्यातोणगाराधिपतेः सुधीमतः,
पुत्रात्मजा चाजितसिंह वर्म्मणः ॥२३४॥

राजा सिरदारसिंह की वडी रानी नरूकी थी जो उणियारा के स्वामी अजीतसिंह की पोती तथा दौलतसिंह की पुत्री थी ॥२३४॥

२९—राज्यानयात्रैव चतुर्भुजस्ययत्,
विष्णोरकारि प्रथित सुमन्दिरम् ।
तस्याग्रसस्था खलु रामवापिका,
सा कुण्डमित्यद्य जनैः प्रभाष्यते ॥२३५॥

इस रानी ने प्रसिद्ध श्रीचतुर्भुज भगवान का सुन्दर मन्दिर

और उसके सामने की रामवापी (जिसको आज कल लोग कुण्ड कहते हैं) बनवाई थी ॥ २३५ ॥

१७९८

३०—सूतेस्म साब्देऽष्टनवाश्व भूमितेऽ-
मायां बुधे बाहुलयात्मजं शुभम् ।
श्रीरायसिंहं च ततः सुवर्णभां,
साध्वीं सुतां श्रीकमलाकुमारिकाम् ॥२३६॥

इस रानी के गर्भ से संवत् १७९८ विक्रमी कार्तिक कृष्णा ३० बुधवार के दिन राजकुमार रायसिंह जन्मे और पश्चात् कमला कुमारी ने जन्म लिया ॥ २३६ ॥

३१—स्त्रीरत्नभूतां पतिदेवतां ददे,
भ्राता त्विमां जालमसिंहवर्म्मणे ।
मर्वीश्वरस्यैव सुताय धीमते,
श्रीमद्विजेकेशरिणोऽरिमर्द्दिने ॥२३७॥

राजा रायसिंह ने अपनी बहिन का विवाह मरुधराधीश महाराजा विजयसिंहजी के कुँवर जालमसिह के साथ किया था ॥ २३७ ॥

३२—चाँकावती या कुश वंश सम्भवा,
राज्ञी द्वितीया पतिदेवताऽस्य सा,
राज्ञी तृतीया विधुभाननाऽस्य या ।
चौहान वंशप्रभवेति सा मता ॥२३८॥

इनकी दूसरी रानी बाँकावती कुशवश की अर्थात कछवाई तथा तीसरी चौहानवश की थी ॥२३८॥

३३—तुर्याऽस्य या मेरतणीति राज्यथ,
सासीत्सुता श्रीगजसिंहवर्म्मणः ।
श्रीमद्विराटाधिपतेर्मनीषिणः,
श्रीरामसिंहस्यसुतात्मजा स्मृता ॥२३९॥

चौथी रानी मेरतणी विराट् (बदनोर) ठाकुर रामसिंह की पोती तथा गजसिंह की पुत्री थी ॥२३९॥

३४—पूर्वं कुमारीं वृजशब्द पूर्विकां,
सूतेस्म सा मेरतणी सुत ततः ।
श्रीरूपसिंह कमनीय दर्शन,
दृष्ट्वा वरार्हामथतां सुतां नृपः ॥२४०॥

३५—ढुंढारदेशप्रभवे ददौ मुदा,
छिड् मर्दिने माधव सिंहवर्म्मणे ।
श्रीजैपुरेऽकार्य्यथ चानया हरेः,
प्रासाद ईशस्य महान् पृथक् पृथक् ॥२४१॥
(युग्मम्)

इस मेरतणी राणी के प्रथम तो वृजकुमारी जन्मी और पीछे राजकुमार रूपसिंह वृजकुमारी को विराह के योग्य होने पर राजा रायसिंह ने जेपुराधीश महाराजा माधवसिंहजी को प्रदान की, जिसने जयपुर में अलग अलग विष्णु भगवान् और महादेव जी के सुन्दर बडे बडे मन्दिर बनवाये थे ॥ २४०॥२४१॥

३६—राज्ञ्यस्य यासीत् खलु पञ्चमी जग-
मालोतणी सा जयसिंहवर्म्मणः ।
श्रीमन्मसूदाधिपतेस्तु पुत्रिका,
पुत्रात्मजा श्रीसुलतान वर्म्मणः ॥२४२॥

पांचवी रानी जगमालोतणी थी जो मसूदा के ठाकुर सुलतान-सिंह की पोती तथा जयसिंह की पुत्री थी ॥२४२॥

३७—षष्ठ्यस्य या जोधपुरीति विश्रुता,
राज्ञी सुता साकिल कीर्त्तिवर्म्मणः ।
रिप्वङ्गनास्येन्दुविधुन्तुदस्य च,
पुत्रात्मजा श्रीगजसिंहवर्म्मणः ॥२४३॥

इनकी छठी रानी जोधपुरी के नाम से प्रसिद्ध थी जो शत्रु विध्वंसक गजसिंह की पोती तथा कीर्तिसिंह की पुत्री थी ॥२४३॥

३८—अस्यां तु सौभाग्यकुमारिकाऽजनि,
चन्द्रानना पद्मविशाललोचना ।
ज्ञात्वा वरार्हां प्रददौ भदावर-
नाथाय राड् वख्तमृगाधिपायताम् ॥२४४॥

इस रानी की कुक्षि से कमलनयना, चन्द्रमुखी सौभाग्य-कुमारी ने जन्म लिया; जिसको विवाह के योग्य होने पर पिता ने भदावर के स्वामी वख्तसिंह को प्रदान की ॥ २४४॥

३९—खङ्गारवान्नाम्नि परोऽथ रोतणी-
शब्दोहि यस्याः खलु सास्य सप्तमी ।

राज्ञी शुभासीद्गजसिंहवर्म्मणः,
पुत्री तु पौत्री हरिसिंह वर्म्मणः ॥२४५॥

सातवी रानी गङ्गागेतणी हरिसिंह की पोती और जगसिंह की पुत्री थी ॥ २४५ ॥

४०—प्राकारि दुर्गं सिरदारवर्म्मणा,
सन्धिस्तु सार्धं रविवशकेतुना ।
सन्तर्प्य दानैः सुधियोविधाय सत्-
कार्य्यं स्वभूलग्नमना ययौ परम् ॥२४६॥

राजा सिरदारसिंह ने गढ बनवाया, महाराणाजी के साथ सधि की और उत्तम भूमिदान आदि से ब्राह्मणों को सतुष्ट किया तथा अन्त में परमेश्वर में ध्यान लगा कर दिव्य लोक को प्रयाण कर गये ॥२४६॥

१८१५

४१—वर्षे शरोर्वीवसुभूमिसंमिते,
ह्यस्त गतेऽस्मिन्सरदारभास्वति ।
भीमान्वयस्याहह यूनि धीमति,
शोकत्तपा दुःखतमोऽरुणे सति ॥२४७॥

४२—सर्वप्रजासु प्रससार सर्वत-
स्तद्धसितु भानुहिमांशुतारकाः ।
शेकुर्नकेऽपि प्रसृत हि सर्वथा,
श्रीरायसिंहेन विना मही मृता ॥२४८॥

(युग्मम)

अत्यन्त दुःख है कि सं० १८१५ वि० में भीमसिंह जी के वंश भास्कर सिरदारसिंह जी के युवावस्था में अस्त होने पर प्राकृतिक सूर्य्य के रहते हुए भी दुःख रूपी रात्रि का अन्धकार प्रजा में सर्वत्र फैल गया। इस अन्धेरे को दूर करने के लिए राजा रायसिंह के बिना सूर्य्य, चन्द्र और तारे आदि कोई भी समर्थ नहीं हुए ॥२४७।२४८॥

॥ इति पंचम पर्व समाप्त ॥
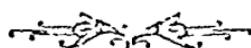
षष्ठ--पर्व

॥ ५ ॥ राजा रायसिंह

(सं० १८१५-१८२५ वि०)

१—अस्यात्मजेषु श्रुति संख्यकेषु च,
श्रीरायसिंहोऽभि वभौ नृपासने ।
ज्यायान् पितेवारिकुलेभकेशरी,
गोविप्रदीनार्त्ति हरो दयार्णवः ॥७४६॥

राजा सिरदारसिंह के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ रायसिंह राजसिंहासन पर विराजे। ये पिता के समान वीर दयालु तथा गो, ब्राह्मण और दीनो की पीडा दूर करने मे तत्पर थे ॥७४९॥

२—श्रीरायसिंहोगुरुणार्पित शुभं,
सिंहासनं प्राप्य जहार तद्व्रतम् ।
रेजेऽन्वह तत्परिहृत्य सोधिक,
सूर्यो यथाऽमानिशिजं महत्तमः ॥७५०॥

राजा रायसिंह पिता के राजसिंहासन को प्राप्त होकर प्रतिदिन अधिकाधिक प्रकाशित हुए और उस पूर्वोक्त दु ख रूपी

अन्धकार का इस प्रकार नाश किया जैसे कि सूर्य भगवान् अमावस्या की रात्रि के घनिष्ट अन्धेरे को नाश करते हैं ।।२५०।।

३—अस्यानुजेषु त्रिपु यो द्वितीयकः,
श्रीरूपसिंहोऽधिविलेभ, उत्तमम् ।
ग्रामं हि गोपाल पुराख्यमापतु,
द्वौ चापरौ वीरगतिं रणाङ्गणे ।।२५१।।

इनके तीन छोटे भाइयों में से बड़े रूपसिंह को गोपाल पुरे का आधिपत्य मिला और अवशिष्ट दो भाई युद्ध भूमि में वीर गति को प्राप्त हो गये ।।२५१।।

१८२१
४—भूनेत्रवस्वेकमितेऽथ वत्सरे,
श्रीरायसिंहो वृहदद्रिवेष्टितम् ।
आवासयामास सुहर्म्यमण्डितं,
रम्यावनौ राजपुरं सुपत्तनम् ।।२५२।।

राजा रायसिंह ने संवत् १८२१ वि० में (वैशाख शुक्ला तृतीया शुक्रवार को) सुन्दर पर्वतमाला वेष्टित उच्च-स्थान में उत्तम दुर्ग और महल आदि से सुशोभित राजपुर नामी नगर वसाया (जो प्राचीन नाम बनेड़े से ही विख्यात है) ।।२५२।।

५—राणारिसिंहे जगतिं प्रशास्तरि,
सामन्तभूपा अखिला दुराशयाः ।
एकीप्रभूता विविधानुपद्रवान्,
राज्येऽभवन्कर्त्तुमथोद्यताः खलाः ।।२५३।।

महाराणा अडसीजी के शासन काल में कितने ही दुष्ट सामन्त एका करके मेवाड राज्य में अनेक उपद्रव करने लग गये ॥२५३॥

६—संधेस्तदा संश्रवतोह्युदेपुर,
गत्वाथ मेवाडपतेर्यदीप्सितम् ।
पत्तं समास्थाय सुनीतिमन्मतं,
संभिद्य चोपायबलेन तानरम् ॥२५४॥

७—तैरेव मेवाडपतेर्मिथो महद्,
यद्वैमनस्यं सुनयेन तद्द्रुतम्,
दूरी प्रकृत्याथ दिनानि कानिचित्,
तत्र ह्युषित्वा प्रययौ निजालयम् ॥२५५॥

उस समय सन्धि के नियमानुसार राजा रायसिंह उदयपुर गये, और राणाजी की इच्छानुसार अपनी कूट नीति से उन दुष्ट सामन्तो को आपस में फोड कर राणा जी के साथ मेल करवाया और कुछ समय तक वहाँ रह कर अपने राज्य को लौट आये ॥२५४।२५५॥

८—एकैव या जोधपुरीति विश्रुता,
राज्यस्य सासीत्पति देवता सुता ।
सौभाग्यसिंहस्य पिशाङ्गणप्रभोः,
पौत्री तु भूपस्य फतेह्रेर्विभोः ॥२५६॥

इनके एक ही राणी थी जो जोधपुरी के नाम से प्रसिद्ध थी।

यह पिसांगण के राजा फतेसिंह जी की पोती तथा सौभाग सिंह की बेटी थी ॥२५६॥

१८१७

९—साश्वेन्दुवस्विन्दुमितेऽब्दके बुधे,
काम तिथौ फाल्गुनिकस्य पाण्डुरे।
हम्मीरसिंहं सुषुवे सुतं ततः,
आनन्दसिंहं च किशोरसिंहकम् ॥२५७॥

इस जोधपुरी राणी के गर्भ से संवत् १८१७ विक्रमी के फाल्गुन शुक्ला १३ बुधवार को राजकुमार हम्मीरसिंह का जन्म हुआ, पश्चात् आनन्दसिंह और किशोरसिंह का ॥२५७॥

१०—अत्रैनया श्याम विहारिणो वरम्,
प्राकारि हीन्द्रावरजस्य मन्दिरम्।
चोखीति वापीतद् सव्य पार्श्वके,
दास्यात्वमुष्या निजनामतः शुभा ॥२५८॥

इस राणी ने यहां भगवान् श्यामविहारि जी का सुन्दर मन्दिर वनवाया, उस मन्दिर के दाहिनी तरफ सुन्दर चोखी नाम वापिका है वह इसकी दासी ने अपने नाम से वनवाई ॥२५८॥

११—आमन्त्रितो भास्करवंशकेतुना,
राणारिसिंहेनच देश गुप्तये।
संनह्य सेनां चतुरङ्गिणीं तदा,
मेवाड़ गुप्त्यै प्रययौ द्रुतं मुदा ॥२५९॥

सूर्यकुल कमल दिवाकर महाराणा अडसीजी ने मेवाड भूमि की रक्षा के लिए जब बुलाया तो शीघ्र ही ये अपनी सेना को सजा कर मातृ-भूमि की रक्षा के लिए उदयपुर पहुँच गये ॥२५९॥

१२—संश्रुत्य चार्वागमनं बलान्वितं,
मेवाडनाथोऽभिमुख तदा द्रुतम् ।
आगत्य सुस्वागतमस्य सादरम्,
कृत्वाह शत्रून् जहि भूप सत्वरम् ॥२६०॥

राजा रायसिंह को सेना सहित आए सुन कर मेवाड-पति राणाजी ने शीघ्र ही सन्मुख आकर सादर स्वागत किया और कहा कि हे राजन शीघ्र ही इन शत्रुओं का नाश करिये ॥२६०॥

१३—इत्थ निशम्य श्रुति शर्मवर्द्धनम्,
मेवाड़नाथस्य वचोऽथ वर्द्धयन् ।
युद्धोत्सव वीरजनेषु साहस,
यात्रानक घोषयतिस्म सत्वरम् ॥२६१॥

राणाजी के वचन सुनते ही वीरों के युद्धोत्सव और साहस को बढाने वाले युद्धयात्रा के नक्कारे (दुन्दुभि) पर डका लगाया ॥२६१॥

१४—नत्वैकलिङ्ग सहसेनया स्वया,
सकर्षयन् सर्वबलहरिहसा ।
रोद्धु ययौ माधवराव नामक,
मेवाडक्षेत्र प्रतिवेष्टुमातुरम् ॥२६२॥

श्री एकलिंगजी महाराज को प्रणाम करके अपनी सेना सहित महाराणाजी की सेना को साथ लिया और पवित्र मेवाड

भूमि में प्रवेश होने के लिए लालायित माधवराव सेंधिया के अवरोधनार्थ रवाना हो गये ॥२६२॥

१५—तंदाक्षिणात्यं प्रबलं रिपुं तदा,
संपद्य शिप्रोपतटं रणे क्रुधा ।
निर्भर्त्स्य मुण्डाकुलितं रणाङ्गणम्,
चक्रेऽभिरन्तुं गिरिशस्य सत्वरम् ॥२६३॥

उस मरहठे प्रबल शत्रु से शिप्रा नदी के तट पर भिड़ गये और युद्ध में उसको तिरस्कृत करते हुए क्षण भर ही में रणाङ्गण को रुद्र के क्रीडार्थ रुण्ड मुण्ड से आच्छादित कर दिया ॥२६३॥

१६—दृष्ट्वा रणे स्वां पृतनां पराजितां,
मेवाड़ सामन्तनृपैरणोद्धतैः ।
दुद्राव हित्वा प्रधनं पराङ्मुखो-
भीतस्तदा राष्ट्रपतिर्हिमाधवः ॥२६४॥ ।

रणोन्मत्तमेवाड़ी वीरों से अपनी सेना को पराजित हुई देख कर माधवराव डर गया और युद्ध भूमि को छोड़ कर भाग छूटा ॥ २६४ ॥

१७—तत्सैन्यवस्तूनि पुरीमवन्तिकां,
मेवाड़सैन्यं युगपद्विलुण्ठने ।
संलग्नमासीज्जयगर्वदर्पतोऽ-
नादृत्यतं युद्धपिपासुकं रिपुम् ॥२६५॥

मेवाड़ की सेना उस प्रबल शत्रु की उपेक्षा करके जीत के

घमसट में शत्रु की छूटी हुई सामग्री और उज्जैन नगरी को लूटने में लग गई ॥२६५॥

१८—अत्रान्तरे स्या पृतनां नवां पुनः,
सनह्य ढुंढारसुसेनया सह ।
युद्धस्थल स्वल्पबल समेत्य स,
निघ्नन् सुतस्थौ शिखरीव बाहुजान् ॥२६६॥

इस अवसर पर माधवराव जैपुर की सेना सहित अपनी नवीन सेना को सजा कर युद्ध-भूमि में आ पहुँचा, और थोड़ी सेना से युक्त बचे हुए राजाओं का नाश करता हुआ पर्वत के समान स्थिर हो गया ॥२६६॥

१९—अस्मिन् रणे वीरगतिं प्रपेदिरे,
भूपास्त्रयोऽमी रणरङ्गदुर्जयाः ।
प्राक्तेषु श शाहपुरावनीश्वरो,
वीरोवदान्यो वयसैवमसतिः ॥२६७॥

इस युद्ध में वीर शिरोमणि तीन राजा वीरगति को प्राप्त हुए, जिनमें प्रथम तो ७० वर्ष की आयुवाले वृद्ध शाहपुराधीश थे ॥ २६७ ॥

२०—वीरो बनेडाधिपतिर्युवा ततः,
सङ्ग्राममूर्ध्नि प्रजहौ कलेवरम् ।
एन द्रुत मे प्रपितुः पितामह-
मुख्याः स्वपृष्ठे सुनिधाय पार्श्वगाः ॥ २६८ ॥

२१—प्रत्याययुस्तेशिविरं शुचार्दिता-
स्तल्लब्धवार्तास्त्यधुनाऽपि मत्कुले ।
तत्रैव वीरोऽथ सलुम्बरेश्वरो—
हत्वा रिपून् कं प्रजहौ रणाङ्गणे ॥२६६॥

(युग्मम्)

दूसरे युवावस्थापन्न वनेड़ाधीश ने सेना के अग्रभाग में वीरता के साथ मस्तक दिया, जिनके शरीर को मेरे दादा के परदादा आदि अपनी पीठ पर लेकर डेरे में आये थे। इनको इस कार्य्य के प्रतिफल या पारितोषिक में जो भूमि मिली थी वह अब तक हमारे कुल के हस्तगत है। तृतीय वीर सलुंबरेश्वर थे जिन्होंने शत्रु को जीत कर युद्धांगण में शरीर त्यागा था ॥२६८॥२६९॥

२२—तस्यानुगास्तत्कुणपं द्रुतं तदा,
निन्युर्निवेशं त्वथ चापरेऽहनि ।
युद्धाङ्गणे शाहपुराधिपं विभुं,
देहुर्गतासुं किलतत्र तज्जनाः ॥२७०॥

सलुम्बरेश के शरीर को भी उनके साथी उसी समय अपने डेरे में ले आये और शाहपुराधीश को उनके भृत्य लोगों ने दूसरे दिन वहीं युद्ध भूमि में दाह क्रिया की ॥२७०॥

१७०८

२३—जन्मास्य नागाङ्कमुनीन्दुसम्मिते,
श्रीरायसिंहस्य बभूव वैक्रमे ।

नाक गतेऽस्मिन्प्रथने नृपोत्तमे,
हम्मीरसिंहोऽथ बभौ नृपासने ॥२७१॥

राजा रायसिंह जी का जन्म सं० १७९८ वि० में हुआ था और सं० १८७५ वि० में शिप्रा के किनारे समाम में दिव्यलोक वासी हुए। इनके पश्चात् इनके पुत्र राजा हम्मीरसिंह जी ने राज सिंहासन को अलंकृत किया ॥७१॥

॥ इति षष्ठ पर्व समाप्त ॥
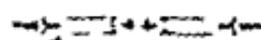
* पूर्वार्द्ध समाप्त *

वीरवंश वर्णनम् ।

उत्तरार्द्धम्

सप्तम-पर्व

[६] राजा हम्मीरसिंह

(सं० १८२५-१८६१ वि०)

१—हम्मीरसिंहावरजौ रणञ्जया,
वानन्दसिंहोऽथ किशोरसिंहकः ।
आनन्दसिंहाय तयोर्धनान्वित,
ग्रामं मुदा कृष्णपुराख्यमुत्तमम् ॥२७२॥

२—वह्वाकर सुष्ठु किशोरवर्म्मणे,
ग्रामं हि कम्मालपुराख्यमुज्ज्वलम् ।
दत्त्वानुजाभ्या क्रमतः पृथक् पृथक्,
दाय पपौ तातवदेवराष्ट्रकम् ॥२७३॥

(युग्मम्)

राजा हम्मीर सिंह के छोटे दो भाई आनन्दसिंह और किशोर सिंह थे, जिनमें से आनन्दसिंह को धन समृद्ध कृष्णपुरा और किशोरसिंह को अनेक प्रकार की खानों से युक्त कमालपुरा गॉव दिया गया। इस प्रकार दोनों भाइयों को उचित भाग देकर वे पिता के सदृश राज्य की रक्षा में तत्पर हुए ॥२७२॥२७३॥

३—पट्टाभिषेकोत्सवकेऽस्य भूपतेः,
श्रीमेदपाटाधिपतिर्महामतेः।
संप्रेषयामास गजाश्वमुख्यकान्,
प्रेम्णा पदार्थान्विविधाँस्तदोचितान् ॥२७४॥

राजा हम्मीरसिंहजी के राज्याभिपेक के अवसर पर महाराणा जी ने प्रेमपूर्वक हाथी, घोड़े आदि अनेक उत्तम पदार्थ भेजे थे ॥ २७४ ॥

४—वप्रं हि दुर्गस्य च पत्तनस्य य-
देनेन दीनार्त्तिहरेण कारितम्।
झालाभिधानोऽतिबलोऽथदारुणो,
युद्धाङ्गणे शत्रुरनेन निर्जितः ॥ २७५ ॥

इन्होंने गढ़ और शहर का परकोटा (चारदीवारी) बनवाया तथा बलवान् शत्रु जालमसिंह झाला को युद्ध में पराजित किया था ॥ २७५ ॥

५—श्रीमेदपाटाधिपतेरणे द्रुतम्,
सेनामनादृत्य गुमान भारती।

दुर्गं दृढ कुम्भलमेरु नामकं,
शैलेन्द्रसस्थं प्रजहार दुर्ज्जयम् ॥२७६॥

एक समय गुमान भारती नामक डाकू ने महाराणा की सेना को हरा कर अजेय, पहाड़ी मजबूत गढ़ कुंभलमेर को जीत लिया ॥ २७६ ॥

६—श्रुत्वा रिपोः कर्म्म विगर्ह्यमद्भुतम्,
मेवाड़नाथोऽतिचुकोप सादरम् ।
प्राहेति त दुष्टमनल्पविक्रमम्,
वीरेन्द्र हम्मीर ! जहीह सत्वरम् ॥२७७॥

जब महाराणा ने यह निन्दित अनोखा समाचार सुना तो बहुत क्रुद्ध हुए और आदर पूर्वक राजा हम्मीरसिंह को बुलवा कर कहा कि 'हे वीर राजेन्द्र' शीघ्र ही जाकर इस पराक्रमी दुष्ट का नाश करो ॥ २७७ ॥

७—स्वीकृत्यचेत्थ नृपवर्य-भाषित,
सबद्धवर्म्मा रणवैजयन्तिकाम् ।
सपृज्य चम्वा सह युद्धदुन्दुभिं,
सघोषयन्कुम्भलमेरुनामकम् ॥२७८॥

८—संप्राप्य तत्रैव रुरोध सर्वतो,
दुर्गं ततोन्वाजनि युद्धमुल्वणम् ।
अन्योन्यमाजौ जयकांक्षया भटा,
आजघ्नुरन्धीकृतमानसा रुषा ॥ २७९ ॥
(युग्मम्)

महाराणाजी की आज्ञा पाते ही प्रस्तुत हो कर युद्ध वैजयन्ति का पूजन किया और युद्ध का नक्कारा वजवा कर कुंभलमेरु जा पहुँचे। गढ़ को घेरते ही भयंकर संग्राम छिड़ गया जिस में परस्पर विजयकी आशा से वीर सैनिक क्रोध से अन्धे हो कर एक दूसरे का नाश करने लग गये ॥ २७८ ॥ २७९ ॥

९—दृष्ट्वा स्ववीरान्प्रधने पराङ्मुखान्,
धुन्वन्नसिं तीक्ष्णतरं तडिन्निभम् ।
निघ्नन्भटान् क्रुद्धमृगेन्द्रवन्नदन्,
युद्धे समेतः सगुमान भारती ॥ २८० ॥

अपने सैनिकों को युद्ध से भगते देख कर गुमान भारती शीघ्र ही क्रुद्ध सिंह के समान गर्जना करके विजली सी चमकती हुई तेज तलवार से वीरों का नाश करता हुआ रणांगण में आ पहुँचा ॥ २८० ॥

१०—हम्मीरसिंहोऽपि तदाशु तं क्रुधा,
निर्भर्त्स्य खड्गेन जहार तच्छिरः ।
शत्रोः स विद्युद्रुगसिः प्रतिष्ठते-
ऽद्यैतस्य राज्यस्य सुशस्त्रवेश्मनि ॥ २८१ ॥

राजा हम्मीरसिंह ने क्रोध में आ कर उसे धमकाया और शीघ्र ही अपनी तलवार से उसका शिर काट लिया। गुमान भारती की वह तलवार अव तक यहां (वनेड़े के) शस्त्रागार में रक्खी हुई है ॥ २८१ ॥

११—ज्येष्ठाऽस्य या मेरतणीति राज्ञ्यभूत्,
सा पुत्रिका वीरमदेव वर्म्मणः।
घाणेरनाम्नोऽवमथस्य भूपतेः।
श्रीकृष्णसिंहस्यतु पौत्रिकामता ॥२८२॥

इन की बड़ी राणी मेरतणी थी जो घाणेरा के ठाकुर कृष्णसिंह की पोती तथा वीरमदेव की बेटी थी ॥ २८२ ॥

१२—चौहानिका राज्यथ या द्वितीयका,
सासीत्सुता श्रीफतसिंहवर्म्मणः।
कोठारियाराड्रपनेस्तु धीमतः,
पुत्रात्मजा श्रीबुधसिंहवर्म्मणः ॥ २८३ ॥

दूसरी राणी चौहानवंश की थी जो कोठारिया के रावत बुधसिंह की पोती और फतेसिंह की पुत्री थी ॥ २८३ ॥

१८०३
१३—मेघ नगाभ्यष्टकुसम्मितेऽब्दके,
तिथ्यां दशम्यां तपसोऽर्जुने शनौ।
श्रीभीमसिंहं सुषुवे सुतं शुभं,
पश्चात्सुतां चन्द्रकुमारिकां शुभाम् ॥२८४॥

इसने सं० १८३७ वि० के माघ शुक्ला १० शनि वार के दिन राजा भीमसिंह को जन्म दिया तथा इसके पश्चात् राजकुमारी चन्द्रकुमारी को ॥ २८४ ॥

१४—श्रीराधिकादासमृगाधिपाय तां,
श्रीमद्‌टोडानगरस्य भूभुजे।

राष्ट्रान्वयार्काय ददौ सुसंस्कृता-
मत्रानयाऽकारि सुचन्द्रवापिका ॥ २८५ ॥

इसे राठोड़-कुल भास्कर शिवपुर वड़ोदानरेश राधिकासिंह को प्रदान की; जिसने यहां अपने नाम से चन्द्रवापी वनवाई थी २८५

१५—सा रामपद्माकर सेतुवाटिका-
सौधाग्रसंस्थास्थि सुवारिपूरिता ।
अद्यैव लोकाः प्रवदन्ति तां नज-
र्वागस्य वापीत्यपि चन्द्रवापिका ॥२८६॥

यह वापी रामसरोवर के वंध पर नजरवाग के महलोंके सन्मुख स्थित है, जिसे आज कल लोग नजर वाग की वाय तथा चन्द्रवाय भी कहते हैं ॥ २८६ ॥

१६—राज्यस्य या जोधपुरी तृतीयका,
चन्द्रानना सा प्रवभूव पुत्रिका ।
उम्मेदसिंहस्य तु नानसीपतेः,
पुत्रात्मजा भारतसिंहवर्म्मणः ॥२८७॥

इनकी तीसरी राणी जोधपुरी थी जो नानसी के स्वामी भारतसिह की पौत्री तथा उम्मेदसिंह की पुत्री थी ॥ २८७ ॥

१७—सेयं शुभा जोधपुरी पतिव्रता,
श्रीमानसिंहं प्रथमं किलात्मजम् ।
सूतेस्म वीरं तनुजं ततो जगत्-
सिंहाभिधानं कमनीयदर्शनम् ॥ २८८ ॥

इसके गर्भ से पहले तो वीर राजकुमार मानसिंह ने जन्म लिया और पीछे से सुन्दर जगत्सिंह ने ॥ २८८ ॥

१८—तुर्या विकानेर्य्यथ यास्य कामिनी,
सासीत्सुता श्रीसुलतान वर्म्मणः ।
राज्ञो विकानेर पतेर्नयोदधेः,
पौत्री त्विय श्रीगजसिंह वर्मणः ॥२८९॥

इनकी चौथी राणी बीकानेरी थी जो बीकानेर के महाराजा गजसिंह की पोती तथा सुलतानसिंह की पुत्री थी ॥ २८९ ॥

१९—उद्वोढुमेना नृपनन्दिनीं पथि,
गच्छन्नसौ कृष्णगढाधिपेन हि ।
सप्रार्थितस्तस्य सुताकरग्रहं,
प्रत्यागतावोमिति गां गदन्ययौ ॥२९०॥

इस राणी से विवाह करने के लिए राजा हम्मीरसिंहजी जब बीकानेर गये, उस समय मार्ग मे कृष्णगढाधीश ने प्रार्थना की कि "मेरी पुत्री के साथ भी विवाह करिए" तो उनसे यह प्रतिज्ञा की कि 'जब बीकानेर से लौटेंगे तब आपकी पुत्री से विवाह अवश्य करेंगे ॥ २९० ॥

२०—कृत्वा यदास्याः करपीडन पुनः,
राष्ट्रं स्वकीय प्रतियान्तमध्वनि ।
राजेन्द्रमेन ह्यभिगम्य सान्वयो,
निन्ये स्वराष्ट्रं सबल समादरात् ॥२९१॥

जब ये विवाह करके बीकानेर से लौटे तो कृष्णगढाधीश मार्ग मे सन्मुख उपस्थित हो कर बड़े समारोह के साथ इनको अपनी राजधानी में ले गये ॥ २९१ ॥

२१—अस्मै बनेड़ाप्रभवेऽरिमर्दिने,
राजेश्वरः कृष्णगढाधिनायकः ।
प्रादाच्छुभां बादुरकेशरी सुतां,
श्रुतेर्विधानाद्वहुयौतकान्विताम् ॥२९२॥

वहां ले जाकर कृष्णगढाधीश महाराजा बहादुरसिंहजी ने अपनी कन्या का विवाह बनेडाधीश राजा हम्मीरसिंहजी के साथ कर दिया और बहुत सा दहेज प्रदान किया ॥ २९२ ॥

२२—रूपनगढ़ाख्ये स्ववधू सहोदरं,
राष्ट्रे नृपं कृष्णगढाख्यके तथा ।
दृष्ट्वा शुभे स्वश्वशुरं पृथग् नृपं,
स्वान्तेऽमले तस्य बभूव विस्मयः ॥२९३॥

राजा हम्मीरसिंह को यह देख कर बहुत विस्मय हुआ कि उनका शाला तो अलग रूपनगढ़ में राज्य करता है और श्वसुर कृष्णगढ़ में (अलग) ॥ २९३ ॥

२३—सत्वात्यनर्हं त्विदमासनीतितो,
राष्ट्रद्वये बादुरसिंह ईश्वरः ।
हम्मीरसिंहेन कृतोऽथतत्सुत,
स्तद्यौवराज्ये विहितो विधानतः ॥२९४॥

इस बात को बहुत अनुचित समझ कर नीत्यनुसार युक्ति से बहादुरसिंह जी को तो दोनो राज्यो का राजा बनाया और उनके राजकुमार को विधि पूर्वक युवराज नियत कर दिया ॥२९४॥

२४—एकीकृत सम्प्रति तत्प्रतिष्ठते,
राष्ट्रोत्तम कृष्णगढाभिधानतः।
पद्मेव विष्णोर्गिरिजेव शूलिनः,
हम्मीरसिंहस्य बभूव सा प्रिया ॥२९५॥

इस प्रकार सगठित किये हुए वे दोनो राज्य अब तक कृष्णगढ के नाम से विद्यमान हैं, और वह राणी हम्मीरसिंह जी को ऐसी प्रिय हुई कि जिस प्रकार विष्णु भगवान् को लक्ष्मी तथा शकर को पार्वती है ॥ २९५ ॥

१८१७
२५—जन्मास्य सप्तेन्द्विभभूमितेऽभ्यभूत्,
१८६१
नाक गतोऽसौ कुरसाष्टभूमिते।
ज्येष्ठोऽथ लेभेऽस्य सुतो नृपासनम्,
श्रीभीमसिंहोनिजपूर्वजार्जितम् ॥२९६॥

राजा हम्मीरसिंह का जन्म स० १८१७ वि० में हुआ था और स० १८६१ वि० में स्वर्गवास। इनके पश्चात् इनके ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंह जी ने राजसिंहासन को अलकृत किया ॥२९६॥

॥ इति सप्तमपर्व समाप्त ॥

अष्टम--पर्व
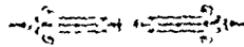
॥७॥ राजा भीमसिंह द्वितीय

(सं० १८६१-१८८६ वि०)

१—श्रीभीमसिंहानुजकौ प्रजाप्रियौ,
श्रीमानसिंहोऽथ जगन्मृगेश्वरः।
श्रीमानसिंहाय ददौ सखेटकम्,
श्रीकज्जलोद्याख्यपुरं महार्थदम् ॥२९७॥

२—लेभे जगत्सिंह इलेश्वरप्रियो,
ग्रामं पुराख्यं तु गणेशपूर्वकम्।
दत्त्वानुजाभ्यामितिदाय मन्वहं,
भीमः पपावात्मसुतामिव प्रजाः ॥२९८॥

(युग्मम्)

राजा भीमसिंह जी के छोटे भाइयों में से मानसिंह और जगत्सिंह दो ही बचे थे, जिनमें से मानसिंह को कजलोदिया और जगत्सिह को गणेशपुरा नामी ग्राम दिया गया। इस प्रकार

राजा भीमसिंह जी अपने छोटे भाइयों को विभाग देकर पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगे ॥२९७। २९८ ॥

३—मेवाडनाथोऽपि सुवर्णमुष्टिक
चामीकरोपस्करकोपसंयुतम् ।
खड्गं गजेंद्रं सुहयं त्वनर्घ्यक,
वस्त्रादिक प्रेषयतिस्म भूषणम् ॥ २९९ ॥

मेवाडनाथ महाराणा ने नियमानुसार इनके सत्कार के लिए सुवर्ण की मूठ युक्त तलवार, हाथी, घोडा, बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण आदि भेजे ॥२९९॥

१८७५
४—बाणर्षिवस्विन्दुमितेऽब्दवत्सरे,
श्रीमेदपाटेश बृटीश राज्ययोः ।
सन्धिर्मिथोऽभूच्छुचिवस्ततोद्रुत-
माङ्गलेयकः कर्नलटाडनामभृत् ॥ ३०० ॥
५—राजन्यबन्धुस्त्वितिहासविद्वरो,
देशप्रबंध प्रविधातुमाययौ ।
मेवाडराज्ये च मरुस्थले भ्रम-
न्नभ्यापयावत्र स तत्र हायने ॥ ३०१ ॥

(युग्मम्)

सवत् १८७५ विक्रमी में महाराणा और बृटिश राज्य में सन्धि हुई थी, अत राजपूतो के शुभचिन्तक प्रसिद्ध इतिहास (टाड राजस्थान) लेखक कर्नल टाड साहब राज्य प्रवन्ध के लिए

मेवाड़ में आये थे। वे मेवाड़ और मारवाड़ में भ्रमण करते हुए इसी वर्ष बनेड़ा में भी आ गये थे ॥३००।३०१॥

६—अस्याभवन्नीत्युदधेः सखा प्रियो-
राड्यस्य तेनास्य मनोपिणामलम्।
सत्यं पुरावृत्तमलेखि चाखिलं,
ग्रंथेऽमले स्वग्रथितेऽतिविस्तरे ॥ ३०२ ॥

वे राजा भीमसिंह जी के प्रिय मित्र थे अतः उन्होंने अपने बनाये हुए विस्तृत इतिहास (टाड राजस्थान) में बनेड़े के पवित्र और सच्चे ऐतिहासिक वृत्तान्त को बड़ी उत्तमता के साथ लिखा है ॥ ३०२ ॥

७—यासीन्महिष्यस्य शुभेडरेचिनी,
साध्वीसुता सा शिवसिंह-वर्म्मणः।
रिप्वन्तकस्येडर भूभृतस्तथा,
अथानन्दसिंहस्य सुतात्मजा स्मृता ॥३०३॥

इनकी बड़ी रानी ईडरेची, ईडर के राजा आनन्दसिंह की पोती तथा शिवसिंह की पुत्री थी ॥३०३॥

८—सेयं त्रिवाणेभमहीमितेऽब्दके, (१८५३)
यामे तिथौ फाल्गुनिकार्जुने कुजे।
सूतेस्म मान्योदयसिंहमर्कभं,
वीरं ततश्चाजितसिंहमार्य्यपम् ॥ ३०४ ॥

इस रानी ने प्रथम संवत १८५३ वि० के फाल्गुन शुक्ला १० मंगलवार को सूर्य समान प्रतापी माननीय राजा उदयसिंह को

और पश्चात् आर्यकुल रक्षक राजकुमार अजितसिंह को जन्म दिया ॥ ३०४ ॥

९—राज्यस्य या मेरतणी द्वितीयका,
श्रीतेजसिंहस्य तनूद्भवा स्मृता ।
श्रीमद्बिराटाधिपतेर्महामतेः,
पुत्रात्मजा श्रीगजसिंहवर्म्मणः ॥३०५॥

इनकी दूसरी राणी मेरतणी बदनोर के ठाकुर गजसिंह की पोती और तेजसिंह की पुत्री थी ॥ ३०५ ॥

१०—सेय सुती दौलतसिंहमादितः,
तृतीय च गुलाबसिंहकम् ।
सुतेस्म जोरावरसिंहक ततः,
पश्चात् सुतां श्रीपरतापदेविकाम् ॥३०६॥

इस राणी के गर्भ से क्रम से राजकुमार दौलतसिंह, गुलाबसिंह और जोरावरसिंह ने जन्म लिया पश्चात राजकुमारी प्रताप देवी ने ॥ ३०६ ॥

११—श्रीभावबागोपतयेऽरिमर्दिने,
श्रीरत्नसिंहाय समर्चिताय ताम् ।
भ्रात्रात्मजः सम्प्रददौ सुसंस्कृता,
श्रुतेर्विधानाद्दृश्यौतकान्विताम् ॥३०७॥

इसका विवाह इसके भतीजे राजा संग्रामसिंह ने मायवा के

स्वामी वीर रत्नसिंह के साथ वेदोक्त विधि से किया और बहुत सा दहेज प्रदान किया ॥ ३०७ ॥

१२—राज्ञी भटान्यस्य शुभा तृतीयका,
यासीत्सुता साभयसिंह वर्म्मणः ।
मोहीश्वरस्यारियमस्य सुव्रता,
पुत्रात्मजा चार्जुनसिंहवर्म्मणः ॥ ३०८ ॥

तीसरी राणी भटियाणी मोही के ठाकुर अर्जुनसिंह की पौत्री तथा अभयसिंह की पुत्री थी ॥ ३०८ ॥

१३—सेयं भटानी सुषुवे सुतं शुभं,
तावद्धि बख्तावरसिंहनामकम् ।
पश्चात्तु मेताबकुमारिकां शुभां,
चन्द्राननां पद्मविशाललोचनाम् ॥ ३०९ ॥

इस राणी के गर्भसे प्रथम तो राजकुमार बख्तावरसिंह ने जन्म लिया और पश्चात् राजकुमारी मेताबदेवी ने जो बहुत ही सुशीला और रूपवती थी ॥ ३०९ ॥

१४—कोटेश्वरायामिततेजसे ददौ,
श्रीरामसिंहाय नृपोत्तमाय ताम् ।
रम्यः स्वनाम्ना ह्यनयात्र सागरो,
कारि प्रजार्थः कृषिसेक बर्ज्जितः ॥ ३१० ॥

मेताबकुमारी का विवाह कोटा के महाराज रामसिंह के साथ

हुआ था। इस राजकुमारी ने वनेड़े में अपने नाम से महतान सागर नामक सुन्दर तालाब प्रजा के हेतु बनवाया जिससे कृषि की सिंचाई का काम नहीं लिया जाता॥ ३१०॥

१५—प्राग्दक्षिणस्यांदिशि पत्तनादिद,
क्रोशस्य दूरेऽस्ति सरोऽतिशोभनम्।
व्ययीकृता विंश सहस्रसंख्यकाः,
सुष्ठ्वस्य मुद्राः खलु सेतु बंधने॥ ३११॥

यह अत्यन्त रमणीक सरोवर राजधानी के पूर्व दक्षिण (अग्नि) कोण में कोश भर की दूरी पर है। इसके बनवाने में २००००) बीस हजार रुपये व्यय हुए थे॥ ३११॥

१६—भीमस्य राज्ञी पतिदेवतेयक,
क्रोड़े सपत्न्याः प्रणिधाय चात्मनः।
पुत्रौ स्वचित्तं पतिपादपद्मयो,
र्वह्नौ प्रविश्यानुगता पतिं दिवम्॥ ३१२॥

राजा भीमसिंहजी की इस पतिव्रता (भटियानी) राणी ने अपनी पुत्री और पुत्र को सौत की गोद में रख के पतिदेव के चरणों में दृढ़ प्रेम लगाया अत अग्नि में प्रविष्ट होकर पति के साथ दिव्यलोक को गई॥ ३१२॥

१७—शक्रश्रियो दीनजनार्त्तिहारिणः,
साधोः प्रजारञ्जन धर्मधारिणः।

१८३७
भीमस्य जन्मर्ष्यनलेभ भूमितेऽ-
१८८६
भूत्षड्गजाष्टाब्जमिते दिवं गतः ॥ ३१३ ॥

इन्द्र के समान संपत्तिशाली इन प्रजापालक राजा भीमसिंह
जी का जन्म संवत् १८३७ वि० में हुआ था और संवत् १८८६
विक्रमी में परलोक गमन कर गये ॥ ३१३ ॥

१८—मुद्राङ्कने राजत ताम्रयोर्नृपैः,
स्वातन्त्र्य मस्यार्जितमेवपूर्वजैः ।
तच्छासने स्यापि सदैव वद्ध्रुवं
सन्तिष्ठते स्मार्य सपत्न घातिनः ॥३१४॥

इसके पूर्व राजाओंने चान्दी और ताम्बे की मुद्रा निर्माण
करने मे जो स्वतंत्रता प्राप्त की; वह स्वतंत्रता आर्यों के शत्रुओं का
नाशक इस राजा के शासन में भी सदैव के समान अचल भाव
से स्थिर रही (अर्थात् इसके राज्य समय में भी टकसाल प्रच-
लित रहीं थी ॥ ३१४ ॥

इति अष्टम पर्व समाप्त ॥
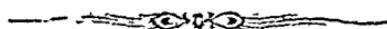
नवम पर्व ।

॥ ८ ॥ राजा उदयसिंह ।

(सं० १८८६-१८९२ वि०)

१—दत्तं स्वपित्रोदयसिंह उज्ज्वल,
सप्राप्य राज्य ह्यधिक बभौवरम् ।
दृष्ट्वा नव भूपमनल्पविक्रमं,
नेमुर्मदान्धा रिपवोऽपि सत्वरम् ॥ ३१५ ॥

राजा उदयसिंह अपने पिता के राज्य को प्राप्त होकर अत्यन्त सुशोभित हुए और इनके पराक्रम के सामने शत्रुओं ने अपना घमण्ड छोड़ कर मस्तक नीचे कर दिये ॥ ३१५ ॥

२—सामन्तवर्गो विविधैरुपायनै-
रभ्यर्च्य सन्तर्पयतिस्म सत्वरम् ।
मेवाडनाथोऽपि गजेन्द्रघोटकौ,
सम्भूषितौ हैम सुसस्कृत त्वसिम् ॥ ३१६ ॥

३—वस्त्राण्यनर्घ्याणि च भूषणान्यपि,
स्वामात्यमुख्येन सहात्र सञ्चयम् ।

संदर्शयन्नीतिमतां हि शाश्वतं,
संप्रेषयामास विवर्द्धयन्मुदम् ॥ ३१७ ॥

(युग्मम्)

सब सामन्तों ने अनेक प्रकार की भेट अर्पण करके इन्हें संतुष्ट किया तथा महाराणाजी ने नियमानुसार सदा की भांति हाथी, घोड़ा, सुवर्णालंकृत तलवार आदि सामग्री देकर अपने प्रधान अमात्य को शीघ्र ही इन के आदर के लिए भेजा ॥३१६॥ ॥३१७॥

४—अस्यानुजेषु त्विषुसंख्यकेषु च,
ग्रामंहि लेभे तसवार्यवाख्यकम् ।
संपत्तिपूर्णं बहुभूमि संयुतं,
तत्रादिमोयोऽजितसिंहनामभृत् ॥ ३१८ ॥

इन के छोटे पांच भाई थे उनमें से बड़े अजितसिंह को धन धान्य युक्त अधिक भूमिवाला तसवार्या ग्राम मिला ॥ ३१८ ॥

५—तेषु द्वितीयाय तु काल सांसकं,
ग्रामं ददौ दौलतसिंह वर्म्मणे ।
आपोत्तमं सूर्य्यपुराभिधानकं,
ग्रामं तृतीयोऽत्र गुलाबसिंहकः ॥ ३१९ ॥

दूसरे भाई दौलतसिंह को काल-साँस और तीसरे गुलाबसिंह को सूरज पुरा दिया गया ॥ ३१९ ॥

६—वीरश्चतुर्थो वरणाभिधानक,
ग्राम तु वख्तावरसिंह उत्तमम् ।
अध्याप जोरावरसिंह आर्य्यपो-
ग्राम पुरो नाम निजाख्यपूर्वकम् ॥ ३२० ॥

चौथे अनुज वख्तावरसिंह को 'वरण' और पाचवे जोरावर सिंह को जोरावर पुरा दिया गया ॥ ३२० ॥

७—दत्त्वानुजेभ्यो जनकोक्तिपालको,
भाग तथापात्स्वप्रजाः प्रजेश्वरः ।
बालत्वमेतस्य गतं महीपतेः,
क्रोडे हि मेवाडपतेर्महामतेः ॥ ३२१ ॥

पिता की आज्ञा पालक राजा उदयसिंह इस प्रकार अपने छोटे भाइयों को राज्य भाग देकर प्रेम से अपनी प्रजा का पालन करने लगे। इन का बालकपन बुद्धिमान महाराणा जी की गोद में व्यतीत हुआ था ॥३२१॥

८—श्रीभीमसिंहो जगतीश्वराधिराट्,
प्रेम्णा स्वपुर्यां सुनिवासहर्म्यकम् ।
दत्त्वास्य बाल्ये स वर निजान्तिके,
तत्रैनमावासयतिस्म बालकम् ॥ ३२२ ॥

महाराणा भीमसिंहजी ने बाल्यावस्था में इन्हे प्रेम से अपने नगर (उदय पुर) में सुन्दर महल देकर अपने पास ही रक्खा था ॥ ३२२ ॥

९--अस्यार्यवंशाब्धिनिशीथिनीपते-
रेकैव झालीति बभूव कामिनी।
सा चित्रसिंहस्य सुता पतिव्रता,
गोगूँदनाम्नो नगरस्य भूपतेः॥ ३२३॥

आर्यवंशरूपी समुद्र मे चन्द्र तुल्य आह्लाद कारी इन उदयसिंहजी के एक ही पतिव्रता झाली राणी थी जो गोगूँदा के स्वामी चित्रसिंह की पुत्री थी॥ ३२३॥

१८७८
१०--सेयं गजाश्वेभकुसम्मितेऽब्दके,
शुक्रासितेऽग्निप्रमिते तिथौ विधौ।
संग्रामसिंहं स्वसविष्ट मित्रभं,
पुत्रं ततोऽनन्दकुमारिकां सुताम्॥ ३२४॥

इस राणी ने संवत् १८७८ विक्रमी के ज्येष्ट कृष्णा ३ तीज चन्द्रवार को सूर्य्यसमान प्रतापी राजा संग्रामसिंह को जन्म दिया; इसके पश्चात् आनन्द कुमारी को॥ ३२४॥

१८८२
११--वर्षेऽथ बाहङ्गजेन्दुसम्मिते,
सेयं हि झाली पतिदेवता परा।
दत्त्वा सुदानानि विधाय सत्क्रियां,
वह्नौ प्रविश्यानुगता पतिं दिवम्॥ ३२५॥

इस पतिव्रता झाली राणी ने सत्कर्म पूर्वक अनेक उत्कृष्ट

दान देकर संवत् १८९२ विक्रमी में अग्नि में प्रवेश करके पति देव के साथ स्वर्ग में प्रयाण किया था ॥ ३२५ ॥

१२—भ्राता ततोऽनन्दकुमारिकां शुभां
चन्द्राननां श्रीजयमण्डलायताम् ।
राघोगढेशाय विधानतो युव-
राजाय शौर्य्योदधये ददौ श्रुतेः ॥ ३२६ ॥

अनन्दकुमारी का विवाह इसके भ्राता राजा संग्रामसिंहजी ने राघोगढ के वीर युवराज मण्डलसिंह के साथ वेदोक्त विधि से किया था ॥ ३२६ ॥

१३—पश्चानुघस्र क्षुभृता क्रतून् सदा,
कुर्वन्स दत्त्वा द्विजतो वरां महीम् ।
राज्य प्रपाल्नीतिमतां निदेशतो,
ह्यल्पे हि काले प्रजहौ कलेवरम् ॥ ३२७ ॥

राजा उदयसिंहजी ने प्रतिदिन दुष्टों को दंड देना आदि राजाओं के पंच यज्ञ किये, ब्राह्मणों को उत्तम भूमिदान दिया और राजनीतिज्ञ पुरुषों की सम्मति से प्रजा का पालन किया। खेद है कि ऐसे होनहार प्रतापी राजा ने स्वल्पावस्था ही में इस नश्वर शरीर को त्याग दिया ॥ ३२७ ॥

१८५३
१४—जन्मास्य रामेष्विभभूमितेऽभवद्,
१८०२
वर्षेऽथयाहङ्कगजेन्दुसम्मिते ॥

याते स्वरस्मिन्रविवंश भूषणे,
संग्रामसिंहो रुरुचे नृपासने ॥ ३२८ ॥

राजा उदयसिंहजी का जन्म सं० १८५३ वि० में हुआ था और स० १८९२ वि० में स्वर्गवास। इन के पश्चात् राजा संग्रामसिंहजी ने राज सिंहासन को सुशोभित किया ॥ ३२८ ॥

॥ इति नवम पर्व समाप्त ॥

दशम पर्व ।

॥ ६ ॥ राजा संग्रामसिंह ।

(सं० १८६२-१६११ वि०)

१—सवीक्ष्य भूप हि नव नवेन्दुवत्,
नेमुः प्रजाः प्रेमरसाभिसप्लुताः ।
देयानि चानेकविधानि सद्दौ,
सामन्तवर्गो विनयेन तर्पयन् ॥ ३२६ ॥

शुक्लपक्ष की द्वितीया के समान वर्द्धन शील इन नवीन राजा संग्रामसिंहजी को देखकर प्रजा ने प्रेम से प्रणाम किया और सामन्तों ने नम्रता पूर्वक विविध भेट (नजराना) देकर संतुष्ट किया ॥ ३२९ ॥

२—श्रीमेदपाटाधिपतिर्गजादिक,
सर्वं सुसम्प्रेषयतिस्म पूर्ववत् ।
स्वीकृत्य तत्सर्वमर च कारयत्,
तत्रास्य कृत्य निखिल तदुत्तरम् ॥ ३३० ॥

महाराणाजी ने भी नियमानुसार हाथी, घोड़ा, और तलवार

आदि सदा की भाँति भेजकर जो जो उदयपुर गमन आदि नियमित कार्य थे सब करवा दिये ॥ ३३० ॥

३—राज्यप्रवन्धं वहुसंमताश्रयं,
कृत्वा प्रजापालन तत्परोऽभ्यभूत् ।
तातस्य नाम्नोदयसागराख्यकं,
संप्रान्धयले स्माथ सरोऽतिसुन्दरम् ॥ ३३१ ॥

ये वुद्धिमान् राजनीतिज्ञों की सम्मति से राज्यप्रवन्ध करके प्रजा का पालन करने में तत्पर हो गये । इन्हों ने अपने पिता के नाम से अत्यन्त सुन्दर उदयसागर नामक तालाव वनवाया था ॥ ३३१ ॥

४—गोत्राणहेतोर्नयनाग्निसंख्यका,
आखेटकेऽनेन हता हरीश्वराः ।
गोभूप्रदानेन सुतर्पिता द्विजाः,
सर्वाः प्रजाः प्रेमरसेन वृंहिताः ॥ ३३२ ॥

राजा संग्रामसिहजी ने गायो की रक्षा के लिए मृगया में ३२ सिंहों का वध किया था । ब्राह्मणो को उत्तम गायें और उर्वरा भूमि देकर तथा प्रजा को प्रेम से पालन करके संतुष्ट किया ॥ ३३२ ॥

५—राज्यस्य या जोधपुरी महिष्यभूत्,
भूपालसिंहस्य रणारिमर्दिनः ।

साध्वी सुतासा च फतेगढप्रभोः,
श्रीचन्द्रसिंहस्य सुतात्मजा स्मृता ३३३ ॥

इनकी बड़ी (पट्ट) राणी जोधपुरी थी जो रणाङ्गण मे शत्रु के घमण्ड को चूर करने वाले फतेगढ के राजा भोपालसिंह की सुयोग्य पुत्री तथा चन्द्रसिंह की पोती थी ॥३३३॥

६—सूतेस्म सा जोधपुरी सुतां शुभां,
चन्द्राननां पद्मविशाल लोचनाम् ।
पित्रा प्रदत्तोऽजवशब्दतः परः,
तन्नाम्नि वीरेण कुमारिकारवः ॥ ३३४ ॥

इस जोधपुरी राणी ने कमलनेत्रा चन्द्रवन सुन्दरमुखी राजकन्या को जन्म दिया था जिसका नाम राजा सग्रामसिंहजी ने अजबकुमारी रक्खा था ॥ ३३४ ॥

७—भ्राता ददौ श्रीरतलामभूभुजे,
वीराय तां भैरवसिंहवर्म्मणे ।
तत्रानयाकारि हरेः सुमन्दिर,
स्वस्याः स्वभर्तुश्च सुनामबोधकम् ॥ ३३५ ॥

इस का विवाह रतलाम के राजा भैरवसिंह के साथ इस के भ्राता राजा गोविंदसिंहजी ने किया था। इस राजकुमारी ने रतलाम मे अपने और अपने पति के नाम से अजब भैरव विहारी नामक विष्णु भगवान् का अत्यन्त सुन्दर मन्दिर बनवाया ॥ ३३५ ॥

८—राज्यस्य या मेरतणी द्वितीयका,
सासीत्सुता वीरमदेववर्म्मणः ।
प्रेष्ठा निमेडाधिपतेस्तु धीमतः,
सौभाग्यसिंहस्य सुतात्मजा स्मृता ॥३३६॥

राजा संग्रामसिंहजी की दूसरी राणी मेरतणी थी जो निमेड़ा के बुद्धिमान् ठाकुर वीरमदेव की प्रिय पुत्री तथा सोभागसिंह की पोती थी ॥ ३३६ ॥

९—सेयं सती चन्द्रकुनन्दभूमिते,
श्रीविक्रमीये पतिदेवतापरा ।
संतर्प्य दानैर्विविधैर्धरामरा-
नग्नौ प्रविश्यानुगता पतिं दिवम् ॥ ३३७ ॥

यह पतिव्रता राणी सं० १९११ वि० में नाना प्रकार के दानों से ब्राह्मणों को संतुष्ट कर के अग्नि प्रवेश पूर्वक पति के साथ स्वर्ग को प्रयाण कर गई ॥ ३३७ ॥

१०—राज्ञी विकानेर्य्यनघा तृतीयका,
यासीत्सुता साहि दलेलवर्म्मणः ।
श्रीमद्विकानेरपतेस्तु धीमतः,
पुत्रात्मजा श्रीसुरतेशवर्म्मणः ॥ ३३८ ॥

इनकी तीसरी बीकानेरी राणी बीकानेर के महाराजा सूरतसिंहजी की पोती तथा बुद्धिमान् दलेलसिंह जी की पुत्री थी ॥ ३३८ ॥

११—जन्मास्य वस्वश्वगजेन्दुसम्मिते,
वर्षेसमासीदिह पाञ्चभौतिकम् ।
ह्यल्पायुषीदं प्रविहाय नश्वर,
चाब्दे शिवाङ्केन्दुमिते गतोदिवम् ॥ ३३९ ॥

राजा सग्रामसिंहजी का जन्म स० १८७८ वि० मे हुआ था और स० १९११ वि० में युवावस्था ही मे प्रजा को चिन्ता-ग्रस्त कर के स्वर्ग-लोक को प्रयाण कर गये ॥ ३३९ ॥

॥ इति दशम पर्व समाप्त ॥

एकादश पर्व ।

॥ १० ॥ राजा गोविंदसिंहः ।

(सं० १६११-१६६१ वि०)

१—अस्यात्मजाभावमवेक्ष्यमन्त्रिणो,
राज्याज्ञया जैपुरपत्तनाद्द्रुतम् ।
आनीय सर्वे सिषिचु र्नृपासने,
गोविन्दसिंहं हयसंख्यके दिने ॥ ३४० ॥

राजा संग्रामसिंहजी के कोई पुत्र नहीं था अतः मंत्रियों ने राणी की आज्ञा से शीघ्र ही जैपुर से गोविंदसिंहजी को लाकर सातवें दिन राजसिंहासन पर बिठा दिया । (इनका जन्म सं० १८९० वि० के माघ शुक्ला ९ भौमवार को हुआ था) ॥३४०॥

२—श्रीमानसिंहस्य सुतात्मजस्त्वयं,
स्याद्दत्तको दौलतसिंहवर्म्मणः ।
एनं युवानं मृगराजविक्रम-
मालोक्य भूपं मुमुदुः प्रजा मुहुः ॥ ३४१ ॥

इन सिंह के समान पराक्रमी नवीन राजा गोविंदसिंहजी को

महाराव राजा रघुवीरसिंहजी

देखकर प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। ये राजा हम्मीरसिंह के छोटे कुँवर मानसिंह के पोते तथा राजा भीमसिंह के छोटे कुँवर दौलतसिंह के दत्तक पुत्र थे ॥ ३४१ ॥

३—सामन्तवर्गो विविधैरुपायनैः,
सन्तर्प्य त श परम समादधौ ।
सम्प्रेषयामास सदैववत्सम,
मेवाडनाथोऽपिगजेन्द्रपूर्वकम् ॥ ३४२ ॥

इन को सामन्तों ने अनेक प्रकार से भेट (नजराना) देकर सतुष्ट किया तथा महाराणाजी ने भी नियमानुसार सदा की भाति राजतिलक के प्रथासूचक (दस्तूर) हाथी घोडे आदि सब भेज दिये ॥ ३४२ ॥

४—सर्वं तदोकृत्य तदुत्तरहियत्,
कृत्य चकाराखिलमेष तद्द्रुम् ।
सप्राप्य चैन ववृधेऽधिक नृप,
राज्य यथा पूर्णविधुहि पद्मिनी ॥३४३॥

इन्होंने महाराणा के भेजे हुए पदार्थों को स्वीकार करके शीघ्रही उदयपुर गमन आदि कार्य सपान्न करदिये। इन से राज्य बहुत समृद्धिशाली होगया जैसे कि पूर्ण चन्द्र को प्राप्त होकर कुमोदिनी सघन हो जाती है ॥ ३४३ ॥

५—वेदान्हि साङ्गन्सकलांश्च धर्म्मतः,
प्राधीत्य शास्त्राण्यखिलान्यभिक्रमात् ।

वेदान्तविज्ञप्रवरोऽपि कर्मसु,
प्रेम्याहिताग्निः श्रुतिधर्म्मतत्परः ॥३४४॥

इन्हों ने धर्मपूर्वक सांग वेदो और शास्त्रों का अध्ययन किया था। ये वेदान्ती होने पर भी वैदिक कर्म के प्रेमी तथा आहिताग्नि (अग्निहोत्री) थे ॥३४४॥

६—आसीदसौधर्म्मभृतां धुरंधरो,
योऽपक्षपात्यर्थिषु नीतितत्परः।
१९१४
गोत्राणहेतोर्मनुनन्दभूमितेऽ-
भूद्योद्धुमाङ्गलेयबलैः समुद्यतः ॥३४५॥

ये धर्म धुरीण राजा अभियोगादि न्याय कार्य में वादी और प्रतिवादियों का निर्णय पक्षपात रहित होकर करते थे। गोरक्षा के इतने पक्षपाती थे कि सम्वत् १९१४ में एक अवसर पर उक्त कार्य के लिए ब्रिटिश सेना से भी लड़ने के लिए उद्यत हो गये ॥ ३४५ ॥

७—संख्यावतां कल्पतरुः सतांप्रियो,
ब्रह्मण्यदेवो जनतार्त्तिनाशकः।
कोपं सुनीत्यासधनैः पपार यो,
वृद्धं धनं ब्रह्मकुलेभ्य आदिशत् ॥३४६॥

ये राजा सत्पुरुषो के प्रिय विद्वानों के कल्पवृक्ष, ब्राह्मणों के भक्त और प्रजा के दुःख हर्ता थे। इन्होंने न्यायोपार्जित द्रव्य

से कोप को भरा तथा ऐसे ही द्रव्य से ब्राह्मणों को तृप्त किया ॥ ३४६ ॥

८—वृन्दावनेऽकारि पवित्रभूस्थले,
श्रीब्रह्मकुण्डस्यतटेऽतिसुन्दरम् ।
श्रीनृत्यगोविन्दविहारिमन्दिर,
श्रीशस्य पूजार्थमनेन हार्दतः ॥ ३४७ ॥

इन्होंने पवित्र वृन्दावन क्षेत्र में ब्रह्मकुण्ड के तट पर श्री लक्ष्मीपति विष्णु भगवान की प्रेम से पूजा करने के लिए श्री नृत्यगोविंद विहारी जी का अत्यन्त सुन्दर मन्दिर बनवाया था ॥ ३४७ ॥

९—अभ्यागतेभ्यश्चणकान्नमन्वह,
तत्रातिथिभ्यः सततान्नभोजनम् ।
दातु पुर चामलखेटकाख्यक,
क्रीत्वार्पयामास तदर्थमाशु सः ॥ ३४८ ॥

वहा पर दीनों को चणे और अतिथिया को भोजन (सदाव्रत) देने के लिये आमल खेडा नामी गाव मोल लेकर समर्पण करदिया ॥ ३४८ ॥

१०—पूर्वेऽचनेरा प्रमुखान्यनेकशो,
राष्ट्रस्य वृद्धै-र्खलु पुट्टनान्यथ ।
क्रीतान्यनेन प्रचुरैर्धनव्ययै-
स्तत्रापि निर्वारयतिस्म गोवधम् ॥ ३४९ ॥

राज्य की वृद्धि के लिए बहुत द्रव्य व्यय कर के पूर्व में अचनेरा आदि कई गांव मोल लिए और वहां भी गोवध बन्द करवा दिया ॥ ३४९ ॥

११—अत्रस्वराष्ट्रे सुसरांस्यनेकशो,
दुर्गे सुसौधानि वियल्लिहान्यसौ।
आरामभूमौ निजपत्तने तथा,
रम्याणि संकारयतिस्म सुश्रवाः ॥ ३५० ॥

इस यशस्वी राजा ने अपने राज्य में सुन्दर तालाव, गढ़ में आकाश से बातें करने वाले रमणीक महल और गांव तथा बागों में उत्तम भवन बनवाये थे ॥ ३५० ॥

१२—राज्यस्य साध्वी महिषीन्दुभानना,
योदावती प्रेष्ठतमातिविश्रुता।
आसीदकेलीवसुधाधिपस्य सा,
पुत्री शुभा श्रीबलवन्तवर्मणः ॥ ३५१ ॥

इनकी अत्यन्त प्रिया बड़ी (पट्ट) राणी उदावती प्रसिद्ध थी जो आकेली के ठाकुर बलवन्तसिंह की श्रेष्ठ पुत्री थी॥३५१॥

१३—राज्यस्य या श्रीनरुकी द्वितीयकाऽऽ
सीत्सोणियाराधिपतेः शुभात्मजा।
श्रीमत्फतेकेशरिणोऽरिमर्दिनो,
विख्यातकीर्तेः कुशवंशभास्वतः ॥ ३५२ ॥

इन की दूसरी राणी नरुकी थी जो कुशवंश के सूर्य

शत्रुनाशक उणियारा के प्रसिद्ध रावराजा फतेसिंह की श्रेष्ठ पुत्री थी ॥ ३५२ ॥

१४—याकच्छवाही प्रमदा तृतीयकाऽ-
स्यासीद्धिमच्छन्द्रपतेः सुनन्दिनी ।
त्रैविक्रमाख्यस्य नृपोत्तमस्य सा,
श्रीचित्रसिंहस्य तु पुत्रपुत्रिका ॥ ३५३ ॥

तीसरी कछवाही राणी मच्छन्द्र के राजाचित्रसिंह की पोती तथा त्रैविक्रमसिंह की पुत्री थी ॥ ३५३ ॥

१५—सेयं सुतं अथक्षयसिंहनामकं,
१९२२
सूतेस्म वर्षे द्विभुजाङ्कभूमिते ।
ऊर्जस्य शुक्ले नवमीदिने भृगौ,
पश्चात्ततोऽसूयत रामसिंहकम् ॥ ३५४ ॥

इस कछवाही राणी के गर्भ मे प्रथम स० १९२२ वि० के कार्तिक शुक्ला नवमी शुक्रवार को राजकुमार अक्षयसिंह उत्पन्न हुए, पश्चात् रामसिंह ॥ ३५४ ॥

१६—राज्ञी चतुर्थी शुभगास्य चावडी,
या प्रेयसी सा प्रबभूव पुत्रिका ।
आरवनाज्ज्यो निनदः परोऽस्तियत्,
नाम्नि प्रभोस्तस्य पुरस्य भूपतेः ॥ ३५५ ॥

राजा गोविंदसिंह जी की चौथी सौभाग्यवती राणी चावडी थी जो आरज्या के ठाकुर की पुत्री थी ॥ ३५३ ॥

१७—आसीत् किलास्याक्षयपुण्यपाकतः,
एतद्गृहे अक्षयसिंहवर्म्मणः ।
स्थाने जनुर्लोकहितार्थ सन्मते-
र्विद्याकलामानयशौर्य्यवारिधेः ॥ ३५६ ॥

इन के घरमें अक्षय पुण्य के प्रभाव ही से मान, विद्या, कला, न्याय और शौर्य के समुद्र तथा परोपकारी कुँवर अक्षयसिंह का जन्म हुआ था ॥ ३५६ ॥

१८—श्रीरामसिंहेन सहानुजेन तं,
क्रीडन्तमालोक्य जनाः प्रमेनिरे ।
श्रीरामकृष्णावथ रामलक्ष्मणा-
वेनौ कुमारावपराविवध्रुवम् ॥ ३५७॥

राजकुमार अक्षयसिंह और रामसिंह को खेलते हुए देखकर लोग इन्हें दूसरे राम-लक्ष्मण तथा राम-कृष्ण मानते थे, अर्थात् यह जोड़ी बहुत ही रमणीक और सुयोग्य थी जैसी कि राम लक्ष्मण और बलदेव-कृष्ण की जोड़ी थी ॥ ३५७ ॥

१९—गोविन्दसिंहोऽपि तयोः शुभेच्छया,
दानानि नानाविध भोजनानि च ।
शास्त्रोक्तरीत्या प्रददौ दिने दिने,
पारायणं कारयतिस्म सश्रुतेः ॥३५८॥

राजा गोविंदसिंहजी इन दोनों राजकुमारों की कुशलता के लिए प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मणों को भोजन और नाना प्रकार के दान देते रहे तथा वेदों का पारायण करवाते थे ॥३५८॥

२०—संस्कारकालेऽथविधानतः श्रुतेः,
सर्वाणि कर्माणि शरीरशुद्धये ।
चक्रे द्विजत्व प्रतिपादकान्यसौ,
चाध्यापयामास विधानपूर्वकम् ॥ ३५९ ॥

यज्ञोपवीत के समय द्विजत्व सपादन करनेवाले सब कर्म शरीर शुद्धि के लिए वेदोक्त रीति से किये गये और विधि पूर्वक पढाया ॥ ३५९ ॥

२१—अधीतवेदौ समधीत नीतिकौ,
शस्त्रास्त्रशिक्षासुकलाकुलाविमौ ।
दृष्ट्वात्मजावात्मनि नृपतेर्ममौ,
नैपा मुदस्येन्दुमिवोदधेः परा ॥३६०॥

राजनीति सहित पडङ्गवेदों को पढ कर शस्त्रास्त्र कला आदि में प्राविण्यता को प्राप्त हुए अपने दोनो राजकुमारो को देख कर राजा गोविंदसिंह के हर्ष का पार नहीं रहा, जैसे कि पूर्ण चन्द्र को देख कर समुद्र असीम हर्ष को प्राप्त होता है ॥३६०॥

२२—श्रीमद्दयानन्द इहागतोभ्रमन्,
१९३८
श्रीभारतेऽष्टाग्निनवेन्दुसम्मिते ।
वर्षे हि वेदार्थनिजोक्तिकल्पको,
विद्वान् विजेता विदुषां ज्ञमानिनाम् ॥३६१॥

वैदिक-धर्म्म-प्रवर्त्तक प्रसिद्ध श्रीमद्दयानन्द स्वामी अखिल भारत में भ्रमण करते हुए सम्वत् १९३८ में यहाँ भी आये थे ।

आप वेदों की व्याख्या करने में प्रबल युक्ति प्रदर्शक थे तथा शास्त्रार्थ में पण्डितमन्य विद्वानों के घमण्ड को बात की बात में चूर्ण कर देते थे ॥२६१॥

२३—दृष्ट्वा बनेड़ाधिपतेस्तु कोविदान्,
वेदार्थविज्ञाञ्छ्रुतिपारगं नृपम् ।
वेदान्तविज्ञं नयतन्त्रकोविदं,
शस्त्रातिशौण्डं जनताभिपालकम् ॥२६२॥

२४—श्रुत्वैनयो राजकुमारयोर्वरं,
गानं श्रुतेः पाठमतुष्यदाश्वलम् ।
सोऽत्राध्यगीष्ट प्रभुराशु गायनं,
साम्नः स पाठं नृपपण्डितान्यतिः ॥ २६३ ॥

(युग्मम्)

स्वामी जी बनेड़ाधीश को वेद-वेदान्त राजनीति-विज्ञ तथा शस्त्रास्त्र कला में प्रवीण और प्रजापालन में तत्पर देख कर बहुत प्रसन्न हुए। जब राज पण्डितों की वेदार्थ विषयक प्रौढ़ विद्वत्ता और राजकुमारों का वेदपाठ कौशल देखा तो उनके हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने यहाँ (नगर से पूर्व झालरा के शिवालय में) रह कर राज पंडितों से सामवेद का गाना और कुछ पाठ सीखा। (अपने निघण्टु को यहाँ के प्राचीन निघण्टु से शुद्ध भी किया) ॥२६२।२६३॥

२५—कालेऽल्पके धर्म्म्यनयोः समस्करी,
चित्तोडनाम्नि प्रथिते सुपत्तने ।

पाठं घनान्तं यजुषोऽथ गायन,
साम्नोऽभिसे श्रुत्य सुहर्षितोऽभवत्॥३६४॥

पश्चात् चित्तौड नगर में पुन इन दोनों राज-कुमारों के घनान्त यजुर्वेद के पाठ और सामवेद के सुन्दर गायन को सुन कर स्वामीजी वहुत हर्षित हुए॥३६४॥

२६—तेनैनयोर्गानकथा निवेदिता,
मेवाडनाथाभिमुखं तदैव सः।
श्रुत्वा श्रुतेर्गानमपूर्वमश्रुत,
राजर्षि सून्वोः प्रबभूव विस्मितः॥३६५॥

उन्होंने महाराणाजी के समुख उक्त गान का वृत्तान्त सुनाया, तो उसी समय महाराणाजी ने इन दोनों राजकुमारों को बुलाकर इन्हीका अपूर्व श्रुति गान सुन वे वहुत प्रसन्न हुए॥३६३॥

२७—मत्वा वनेडाधिपतिर्निजात्मजं,
वीरं युवानं सुधियं प्रजाप्रियम्।
श्रीयौवराज्येऽभिषिषे च सत्वरं,
बाह्वब्धिनन्दावनिसम्मितेऽब्दके॥३६६॥

वनेडाधीश राजा गोविन्दसिंहजी ने अपने ज्येष्ठ राजकुमार अक्षयसिंह जी को वीर, बुद्धिमान, प्रजाप्रिय और युवावस्थापन्न देख कर स० १९४२ वि० में युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया॥ ३६६॥

२८—श्रीमद्वनेडाधिपतिर्ददावसौ,
श्रीरामसिंहाय नयाब्धिसेतवे।

लाँप्याभिधानं खलु पुट्टनं वरं,
चोत्तुङ्गशैलालियुतं सखेटकम् ॥३६७॥

राजा गोविन्द सिंहजी ने अपने नम्र छोटे राजकुमार रामसिंह को उच्च पर्वतमाला वेष्टित लाँप्या नामक गाँव प्रदान किया ॥३६७॥

राजा गोविन्दसिंहजी की दिनचर्या ।

२९—वक्ष्येऽस्य सन्मानवहेतवे दिन-
चर्य्यां सदायं रविवंश-भास्करः ।
यामभ्यकार्षीत्प्रतिवासरं हिताम्,
शास्त्रोदिता मार्य्यनृपैः सुसेविताम् ॥३६८॥

आर्य राजाओं से अभ्यास की हुई शास्त्रोक्त जिस दिनचर्या को सूर्यकुल कमल दिवाकर राजा गोविन्दसिंह जी प्रतिदिन करते थे; उसे सत्पुरुषो के हितार्थ लिखता हूँ ॥ ३६८ ॥

३०—त्यक्त्वा रजन्याः प्रहरे तृतीयके,
स्वापं मुहूर्त्तेऽर्कमिते हि नैशिके ।
आलोक्य तावन्मुकुरं च मङ्गलं,
स्वेष्टं दृगास्यं सुचकार निर्मलम् ॥३६९॥

रात्रि के तृतीय प्रहर और बारहवें मुहुर्त्त में उठ कर दर्पण आदि माङ्गलिक इष्ट वस्तु देख के नेत्र और मुख को स्वच्छ करते थे ॥३६९॥

३१—चन्द्रेऽथ विष्णोः स्मरणं समासतः,
शौचक्रियामप्यखिलां विधानतः ।
सप्तौ मुहूर्त्तेऽनलभूमिते ततः,
श्रौत्राभिपूतेन शुभेन वारितः ॥ ३७० ॥

पश्चात् संक्षेप से परमपिता जगदीश्वर का स्मरण करके संपूर्ण मलोत्सर्गादि शौच क्रियाओं से निवृत्त होने पर तेरहवें मुहूर्त्त में वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित पवित्र और स्वच्छ जल से स्नान करते थे ॥३७०॥

३२—सन्ध्याविधौ सुष्टु ततोऽनुवासरं,
मन्त्रं हि गायत्र्यभिधानमक्षरम् ।
पूतं जजाप त्रिसहस्रसंख्यकं,
स्वर्गापवर्गासिपरं कक्कारकम् ॥३७१॥

प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन के समय स्वर्ग तथा मुक्ति सुखदायक गायत्री मंत्र के तीन हजार जप करते थे ॥३७१॥

३३—कृत्वाग्निहोत्रं विधिनारुणोदये,
संतर्प्य विप्रान् निज धर्म्मसिद्धये ।
दानैर्मुहूर्त्तेऽथ शुभे द्वितीयके,
प्रासादमेतिस्म हरेर्हि दैनिके ॥३७२ ॥

सूर्योदय के समय विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके अपने धर्म की सिद्धि के लिये दान, दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों को संतुष्ट करते और पश्चात् दिन के दूसरे मुहूर्त्त में विष्णु भगवान के मंदिर दर्शन करने को जाते ।।३७२॥

३४—श्रीनृत्यगोपालमनन्यमानसः,
सं नम्य तत्रेह सतश्च तस्थुषः ।
पारायणं स्वस्ति समासिकं सह,
तैरभ्यकार्षीद्यजुषोऽर्जुनस्य ह ॥ २७३ ॥

शुद्ध मन से श्रीनृत्यगोपाल भगवान को प्रणाम करके वहाँ बैठे हुए सत्पुरुष ब्राह्मणों को प्रणाम करते और उनके साथ शुक्ल यजुर्वेद का मासिक पारायण (पाठ) करते ॥२७३॥

३५—पाठं घनान्तं श्रुतिपारगामिनाम्,
शुश्राव शास्त्रार्थमसौहि शास्त्रिणाम् ।
अभ्यागतानां श्रुतिसंप्रचारिणां,
नाना ककुब्भ्यो जगतोपकारिणाम् ॥२७४॥

ये वेदपाठियों के घनान्त वेदपाठ तथा अनेक दिशाओं से आये हुए वेद-प्रचारक परोपकारी शास्त्रियों के शास्त्रार्थ को सुनते थे ॥ २७४ ॥

३६—ये पण्डिता स्तेष्वतिगन्तुकामिन-
आसन्यशोर्थी किल दक्षिणामिनः ।
तेभ्यः प्रदायैव महीभृतां सतः,
प्रस्थापयामास गृहाय तांस्ततः ॥ २७५॥

उन आगत शास्त्रियों में से जो जाने वाले होते उन को यह यशस्वी राजा पर्याप्त दक्षिणा देकर अपने घर विदा करता था ।

३७—एवं विसृज्याशु दिनं बुधेश्वरान्,
सन्तृप्य वाग्भिः समुपागतान्नरान् ।

तुर्य्ये मुहूर्त्ते नृपरीतितः शुभां,
भुक्त्वाथ सभ्यैः सह चाविशत्सभाम् ॥३७६॥

इस प्रकार आये हुए पंडितों को प्रतिदिन विदा कर उस समय आये हुए कर्मचारी आदमियों को यथा योग्य सभाषण आदि से सन्तुष्ट करके फिर चौथे मुहूर्त में भोजन कर राजाओं के नियमानुसार सभ्यों सहित राजसभा में पधारते ॥ ३७६ ॥

३८—अध्यास्य धर्म्मासन मादितोऽमरान्,
ब्रह्मण्यदेवः प्रणिपत्यगोऽमरान् ।
कार्य्याणि वादिः प्रतिवादिनां तत-
श्चक्रे स्वय नीतिमतानुसारतः ॥ ३७७ ॥

वहां देवता और ब्राह्मणों को प्रणाम करके न्याय की गद्दी पर बैठते और राजनीति के अनुसार वादी और प्रतिवादी के निर्णय को विचार-पूर्वक करते थे ॥ ३७७ ॥

३९—कृत्य विराजो*ष्टविध स्वल कृत-
स्तत्रस्थितोऽनुक्रमतः समादितः ।

---

*—दुष्ट निग्रहण दान प्रजाया परिपालनम् ।
यजन राजसूयादि कोषाणां न्यायतोऽर्जनम् ॥ १ ॥
करदीकरण राज्ञां रिपूणां परिमर्दनम् ।
भूमेरुपार्जनं भूयो राजवृत्त तु अष्टधा ॥ २ ॥

१दुष्ट को दण्ड न करना, २दान देना, ३ प्रजा की रक्षा करना, ४राजसूयादि यज्ञ करना, ५न्याय से कोष पूर्ति, ६कर लेना, ७शत्रुओं का नाश करना; और ८भूमि जीतना ये राजाओं के आठ काम हैं ॥ १ ॥ २ ॥

कृत्स्नं चकारानुदिनं विधानतः,
सम्मोदयन् सर्वजनान् सुनीतितः ॥ ३७८॥

सर्व प्रकार से सुसज्जित हो कर सदा उक्त न्यायासन पर बैठे हुए सावधानी से राजाओं के संपूर्ण आठ कर्म विधि-पूर्वक करते हुए अपनी न्याय-शीलता से सब लोगों को प्रसन्न करते थे ॥ ३७८ ॥

४०—ऊर्ध्वं मुहूर्ते शुभदामितोऽष्टमे,
मध्याह्नसन्ध्यां कुरुतेस्म सोत्तमे ।
पश्चात्ततः सौधवरेऽतिसुन्दरे,
विश्रम्य किञ्चित्समयं मनोहरे ॥ ३७९ ॥

पश्चात् आठवे उत्तम मुहूर्त में कल्याणकारिणी मध्याह्न संध्या करके कुछसमय तक मनोहर महल में आराम करते॥३७९॥

४१—शौचादिकर्म्माणि समाप्य तत्त्वतः,
१०
पश्चान्मुहूर्त्ते खमहीमिते ततः ।
साकं सदस्यैः पुनरेति सत्सभां,
न्यायार्थिनां नीतिमतां सुवल्लभाम् ॥३८०॥

फिर दशवें मुहूर्त्त मे शौचादि से निवृत्त होकर सदस्यों सहित न्याय और नीतिमानो की प्रिय सभा मे पधारते ॥३८०॥

४२—तत्रस्थितः सोऽनुदिनं स्वयं सदा,
कार्य्याणि शेषाणि समाप्य सन्मुदा ।

आयव्ययौ लाभमथो विधानतः,
सम्यक्समालोक्य ततः स्वलङ्कृतः ॥ ३८१॥

४३—नूनं मुहूर्त्तेऽग्निरसामिते ह्यम्,
संरूह्य युक्तो बहुसादिभिः स्वयम् ।
पद्गैश्च सद्रष्टुमगात्सुवन्दिभिः,
कार्य्याणि सगीतयशाः सुरागिभिः ॥३८२॥

(युग्मम्)

उस सभा मे बैठ कर प्रतिदिन बचे हुए कामों को प्रसन्नता-पूर्वक समाप्त करते और आय, व्यय तथा लाभ आदि भली प्रकार देख कर तेरहवें मुहूर्त मे सुसज्जित होके घोड़े पर सवार होते और पैदल तथा सवारों के साथ राज्य-कार्य अवलोकनार्थ भ्रमण के लिए निकलते । उस समय बहुत से वन्दिजन सुन्दर-राग से इनका यश सुनाते हुए साथ चलते थे ॥ ३८१ ॥३८२॥

४४—सप्तींश्च नागोष्ट्ररथं बलं सदा,
चान्नालयं चोपवनं कदा कदा
गोष्ठं च घासादिगृहं वनं तथा,
जात्वस्य नासीद्भ्रमणं मनाग् वृथा ॥३८३॥

भ्रमण मे इन वस्तुओं का अवलोकन करते थे —अश्व-शाला, गजशाला, उष्ट्रशाला, तथा रथ भवन और अपनी सेनाको सदा और कभी कभी अन्नभंडार और बाग बगीचे भी देखते थे । कभी गोशाला और तृण-भंडारादि देखने का भी अवसर आ जाता था । सार यह है कि इनका कभी भी भ्रमण वृथा नहीं होता था ॥३८३॥

१५

४५—स्नात्वा मुहूर्त्ते शरचन्द्रसम्मिते,
संध्यामुपस्थाय ततोऽभिसंस्कृते ।
कुण्डेऽग्निहोत्रं विदधौ च यत्नतः,
विष्णोः स्तुतिं पौरुषसूक्तमन्त्रतः ॥ ३८४ ॥

पंद्रहवें मुहूर्त अर्थात् सायंकाल में स्नान करके संध्या करते और पवित्र कुण्ड मे हवन करके पुरुष-सूक्त से विष्णु भगवान् की स्तुति करते थे ॥ ३८४ ॥

४६—वन्द्यो मुहूर्त्ते सकलैः स्वलंकृतः,
स्वाप्तैर्निशायाः प्रथमेऽथ वन्दितः ।
सन्तर्पयँस्तानमृताभिवर्षिणा,
सर्वाऽऽच्छरण्यो वचसार्तिकर्षिणा ॥ ३८५॥

४७—तौर्यत्रिकं सर्वजनप्रियंकरम्,
श्रुत्वा मनोज्ञं खलु तैः सदाम्बिरम् ।
कालं विनोदेन सुकाव्यशास्त्रयो-
र्निन्ये चिरं राजकथार्थशास्त्रयोः ॥ ३८६ ॥

(युग्मम्)

रात्रि के प्रथम मुहूर्त्त में अपने सब प्रतिष्ठित लोग आकर इस सुसज्जित वन्दनीय राजा को प्रणाम करते और वे दुःख मिटानेवाले अमृत-तुल्य मधुर वचनो से उन सब को सन्तुष्ट करते थे । उनके साथ सब लोगों को प्रिय लगने वाले सुन्दर गाजे बाजे सुनते हुए कुछ समय तो काव्य और शास्त्र-सम्बन्धी

वार्तों से समय बिताते और अधिक समय तक राजाओं के चरित्र और सपत्तिशास्त्र-सम्बन्धी वार्तों में दत्तचित्त रहते थे ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

४८—सर्वान् यथान्याय मथाभितोषयन्,
प्रादिश्य गन्तु वचसापि मोदयन्।
भोक्तुं मुहूर्त्ते शरसम्मिते वृतः,
स्त्रीभिः समागादवरोधने ततः ॥ ३८७ ॥

इस प्रकार सब को नियमानुसार सन्तुष्ट करके मधुर वचनों से प्रसन्न करते हुए जाने के लिए आज्ञा देते और आप पाचवे मुहूर्त मे राणियों समेत महल में भोजन करने के लिए पधारते। ॥ ३८७ ॥

४९—तत्रैव सौधे सकलर्तुशर्मदे,
भुङ्क्तेस्म वाद्यध्वनिशोभिते कदे।
स्त्रीभिः सहैवं घटिकाचतुष्टयम्,
नीत्वाशने हृष्टमनास्ततस्त्वयम् ॥ ३८८ ॥

५०—भेजे मुहूर्त्ते मुनिसम्मितेऽर्चिताम्,
शय्यामनर्घ्यां विधुभाननान्विताम्।
सेत्थं मुहूर्त्तैः समय भगाथिभिः,
सार्धं प्रणिन्ये प्रविभज्य स्वाग्निभिः ॥३८९॥

(युग्मम)

यहीं सब ऋतु में आनन्ददायक, बाजों की मधुर ध्वनि युक्त सुखप्रद महल मे भोजन करते। इस प्रकार राणियों सहित

भोजन में ४ घटिका समाप्त करके पश्चात् प्रसन्न चित्त हो कर सातवें मुहूर्त में चन्द्रमुखी राणी युक्त निर्मल शय्या पर पधारते थे। इस प्रकार ऐश्वर्य्यदायक तीस मुहूर्त्तों में बांट कर समय को सार्थक करते थे ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥

५१—सर्वं गतं दैववशाद्दिनान्तरे,
वस्त्वभ्यवाप्नोति पुनर्भवान्तरे।
जात्वत्र नाप्नोति पुनर्गतं क्षणं,
तज्जातु नेयं न नृपैर्मुधा क्षणम् ॥ ३९० ॥

क्योंकि गई हुई सब वस्तुएँ भाग्य से दिनान्तर वा दूसरे जन्म में फिर मिल सकती है, परन्तु बीता हुआ क्षण मात्र भी समय पीछा कभी नहीं मिल सकता, अतः राजाओं को चाहिए कि अपना अमूल्य समय क्षण भर भी व्यर्थ न बितावे ॥३९०॥

५२—प्राणात्ययेऽपीह नरै र्न शूरता।
त्याज्या दया नो निजधर्म्मनिष्ठता।
नीतिः प्रजापालनसद्व्रतिस्तथाऽ-
स्यासीत् सदा वागिति देशसत्प्रथा ॥३९१॥

इनका सदा यह कथन था कि "मनुष्य को प्राण त्याग देने चाहिए किन्तु शूर वीरता, दया, धर्म, न्याय, प्रजापालन का प्रेम तथा अपने देश की अच्छी रीति नहीं छोड़ना चाहिए" ॥३९१॥

१८९०

५३—जन्मास्य खाङ्काष्टकुसम्मितेऽभवत्,
तिथ्यां नवम्यां तपसोऽर्जुने कुजे।

१९६१
चन्द्राङ्गनन्देन्दुमितेऽथ वत्सरे,
दिवं गतोऽसौ रविवंश भास्करः ॥ ३९२ ॥

राजा गोविन्दसिंह जी का जन्म स० १८५० वि० के माघ शुद्ध ९ मङ्गलवार को हुआ था और स० १९६१ विक्रमी में ये परलोक सिधारे ॥ ३९२ ॥

इति एकादश पर्व समाप्त ॥

द्वादश पर्व ।
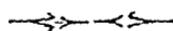
॥ ११ ॥ राजा अक्षयसिंह ।

(सं० १९९१-१९९५ वि०)

१—ब्रह्मण्यदेवे जनतार्त्तितस्करे,
गोविन्दसिंहे रविवंशभास्करे ।
अस्तंगतेऽप्यक्षयसिंहभास्वतः,
सिंहासनेऽभूदुदयो हिमार्कवत् ॥ ३९३ ॥

प्रजापालक, ब्राह्मणों के भक्त और सूर्य वंश की शोभा बढाने वाले राजा गोविन्द सिंह जी के दिव्य लोक-पधारने पर उनके राजसिंहासन पर राजा अक्षयसिंह जी विराजे । ये शीतकाल के सूर्य के समान प्रजा को सुखदाई वैसे ही-शीघ्र ही अस्तंगत हो गये॥ ३९३॥

२—धर्म्मात्मजं प्राप्य यथा गजाह्वयं,
रामं त्वयोध्या शुशुभे यथाधिकम् ।
तद्वद्वनेड़ाख्यपुरं हि संप्रति,
राजेश्वरं अप्यक्षयसिंहमन्वहम् ॥ ३९४ ॥

जिस प्रकार धर्मपुत्र युधिष्टिर से हस्तिनापुर की और मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी से अयोध्या की अधिक

स्वर्गीय राजा अक्षयसिंहजी

शोभा थी उसी प्रकार राजा अक्षयसिंह जी से बनेडा नगर की अधिक शोभा बढी ॥ ३९४॥

३-बाणाङ्गनन्दावनिसम्मितेऽब्दके,
मेवाड़नाथोऽपि गजाश्वकं वरम् ।
रिष्टि सुवर्णार्चितकोपसयुतम्,
ग्रैवेयक मस्तकभूपणं वरम् ॥ ३९५ ॥

४--वासांस्यनर्घ्याणि च वस्तुपूर्वक,
समप्रेषयामासक सर्वमन्यकत् ।
सार्द्धं प्रधानेन सुमन्त्रिणा मुहुः,
सवर्द्धय न्मान्निजपूर्वजार्पितम् ॥ ३९६ ॥

(युग्मम्)

महाराणाजी ने अपने पूर्वजों के दिए हुए मान को बढाते हुए सवत् १९६५ वि० में प्रधान-मन्त्री के द्वारा सुसज्जित हाथी, घोडा, मोतियों का कठा, सिरपेच, सुवर्ण-मण्डित तलवार और बहुमूल्य वस्त्र आदि सब यथा योग्य वस्तुएँ भेजीं ॥३९५।३९६॥

५—मार्गासिते सूर्यमिते तिथौ भृगौ,
स्वीकृत्य तान्सोत्सव पूर्वतस्ततः ।
मेवाडनाथस्य समर्च्य मन्त्रिणं,
प्रास्थापयच्चित्रमृगेन्द्रनामकम् ॥ ३९७ ॥

राजा अक्षयसिंह ने मार्गकृष्ण १२ शुक्रवार को उपरोक्त वस्तुओं को उत्सव करके ग्रहण किया और महाराणा जी के मत्री चित्रसिंह को आदरपूर्वक उदयपुर को विदा किया ॥३९७॥

६—निस्तब्धताङ्गेषु कितास्य दारुणा,
सर्वेस्व पस्माररुजाति मूकता ।
प्रागेव जाता सुकृतेरयं ततो
नोदेपुरं नेनसहागमद्भिसुः ॥ ३९८ ॥

इस पुण्यात्मा राजा के दीर्घ रोग हो जाने से दुर्भाग्यवश प्रधानमन्त्री के संग उदयपुर नहीं जा सका ॥३९८॥

७—प्राग्यौवराज्ये रणवीरमूर्त्तिना,
निर्मापिताः सौधवराः स्वदुर्गगाः ।
१९५६
वर्षे ततोऽङ्गेषुनवेन्दुसम्मिते,
सौधं सुरम्यं सकलत्तु सौख्यदम् ॥३९९॥

८—आरामभूमौ सरसस्तटे शुभे,
पश्चात्ततः सुन्दर औषधालयः ।
रुग्णा भिषग्भिः सुचिकित्सिता इह,
पीयूषहस्तैः प्रभवन्ति निर्गदाः ॥ ४०० ॥

इन्होंने अपने यौवराज्य समय दुर्ग में अक्षयनिवास आदि उत्तम महल बनवाये और सं० १९५६ वि० में रामसरोवर के तट पर रमणीक बाग बनवा कर उसमें सदा सुखदायक सुन्दर महल बनवाया। इस बाग के पास ही एक श्रेष्ठ औषधालय स्थापित किया जिसमें सुयोग्य वैद्यो के अमृत-तुल्य हाथो से चिकित्सा करवाके सैकड़ों रोगी रोग निर्मुक्त होते है ॥३९९।४००॥

९—न्यायालयानेवमचीकरद्भिसुः,
तत्राशुवादिप्रतिवादिनोध्रुवम् ।

न्यायं लभन्ते सकला जनाः स्थिर,
नीत्युक्तरीत्या जनतार्त्तिभीतया ॥ ४०१ ॥

इसी प्रकार इन्होंने न्यायालय (कचहरियाँ) स्थापित किये, जिनमे सब लोग नीति के अनुसार अपना न्याय करवाते हैं ॥ ४०१ ॥

१०—आखेटभूमौ जनतापकारकान्,
जन्तून्निहन्तु भवनानि दारुणान् ।
विद्याप्रवृध्धायच मूलपत्तने,
विद्यालयं रम्यमतिष्ठिपत्तराम् ॥ ४०२ ॥

इन्होंने प्रजा को हानि पहुँचाने वाले भयानक हिंस्र जन्तुओं को नाश करने के लिये आखेट स्थलों मे उच्च मृगया भवन तथा विद्या वृद्धि के लिए निज राजधानी (बनेडा) मे सुन्दर पाठशाला स्थापित की ॥४०२॥

११—प्राधीत्य विद्यां खलु तत्र बालकाः,
वृत्तिं लभन्ते बहुमानसंयुताम् ।
राष्ट्रेऽववन्धद्धि कृषिप्रवृद्धये,
दीर्घाणि रम्याणि सरांसि राडसौ ॥ ४०३॥

उपरोक्त विद्यालय मे बालक विद्याध्ययन करके उत्तम जीविका पाते हैं । इन्ही राजा साहब ने कृषि की उन्नति के लिए बडे बडे सुन्दर सरोवर (बाँध) अपने राज्य मे बनवाये ॥४०३॥

१२—अन्यश्च नीत्या निजनामपूर्वको,
व्याख्यग्रहो नीतिसुधाकराख्यकः ।

एनेन लोकव्यवहारभास्करः,
कल्पद्रुमो नीतिविदां सुभूभुजाम् ॥ ४०४ ॥

इन्होंने अपने नाम से 'अक्षय नीति सुधाकर' नामक एक नीति का अत्युत्तम ग्रन्थ बनवाया, जो राजनीति जानने के अभिलाषी राजाओं को राज्य। व्यवहार दिखलाने में सूर्य के समान प्रकाश करता है ॥४०४॥

१३—ग्रंथस्य चैतस्य कथान्तिमेऽह्निमें,
ह्यूर्चांविधायावनिमत्र दिग्विधाम्।
वंशानुगं तद्ददाद्धि पण्डितो-
पाधिं गुरुत्वं बहुमान पूर्वकम् ॥ ४०५ ॥

इस ग्रंथ की कथा की समाप्ति के दिन मानपूर्वक चरणों की पूजा करके मुझे उर्वरा-भूमि प्रदान सहित वंशानुगामी पण्डितपद की उपाधि और गुरु शब्द से संभूषित किया ॥४०५॥

१९५२

१४—अङ्केषुनन्देन्दुमितेऽथवत्सरे,
काश्मीरनाथेन महीपजिष्णुना।
आमन्त्रितस्तत्र ययौ समादरात्,
सार्द्धं कुमारेण वरैश्च मन्त्रिभिः ॥ ४०६ ॥

ये सं० १९५९ वि० में कश्मीर नरेश के निमन्त्रण देने पर राजकुमार और प्रतिष्ठित मंत्रियों सहित कश्मीर गये थे ॥४०६॥

१५—तत्रास्य कृत्वा बहुमानपूर्वकम्।
भूस्वर्गराट् स्वागतमेनमकंभम् ॥

प्रासादइन्द्रालयसन्निभेनिजे ।
संस्थापयामासवर्द्धयन्मुदम् ॥ ४०७ ॥

वहाँ काश्मीर के महाराज मही-महेन्द्र प्रतापसिंहजी ने इनका बहुत मान-पूर्वक स्वागत करके परस्पर हर्ष बढाते हुए इन्द्र-भवन के समान सजे हुये अपने महल में इन तेजस्वी युवराज को ठहराये थे ॥ ४०७ ॥

१६—अन्यान्यनेकानि किलास्य सन्ति स-
द्वीर्य्याणि मेधानय शौर्य्यवारिधेः ।
शिक्षाप्रदान्येव महामहीभुजां,
तान्यत्र नो व्यासभियाङ्कितान्यलम्॥४०८॥

इस वीर राजा के और भी कई कार्य बडे बडे राजाओं को शिक्षाप्रद हैं किंतु विस्तार के भय से यहाँ नहीं लिखे गए ॥४०८॥

१७—कार्य्येष्वसौ सिद्धमनोरथः सतां,
विद्यावतां कल्पतरुर्द्विषद्विपाम् ।
शास्ता सुचिन्तामणिरात्मसेविनां,
शौर्य्यानुकम्पार्जविनां च दर्पणः ॥ ४०९ ॥

ये प्रत्येक कार्य में सफल, विद्वानों के लिए कल्पवृक्ष, शत्रुओं के लिए प्रबल शासक, सेवकों के लिए चिन्तामणि और वीर तथा दयालु राजाओं के लिए आदर्श नरेश थे ॥४०९॥

१८—जेष्ठास्य राज्ञी खलु वेशणीति या,
सासीत्सुता शकरचन्द्रवर्म्मणः ।
खजूरनाम्नोऽचसथस्य भूभुजः,
पुत्रात्मजा श्रीरघुनाथवर्म्मणः ॥ ४१०॥

इनकी बड़ी राणी बेशणी कहलाती थी जो खजूर गाँव के राणा शंकरबख्श की पुत्री तथा रघुनाथसिंह की पोती थी ॥४१०॥

१८—राज्ञ्यस्य या मेरतणी द्वितीयका,
सासीत् सुता श्रीसबलेश वर्म्मणः ।
श्रीमत्कुमारस्य विराटभूपतेः,
पौत्री तथा केशरिसिंहवर्म्मणः ॥ ४११ ॥

इनकी दूसरी राणी मेरतणी थी जो बदनोर के कुँवर सबल सिंह की पुत्री तथा केशरीसिंह की पोती थी ॥४११॥

२०—सूतेस्म सा पूर्वमियं सुतां सती,
साध्वीं शरच्चन्द्रनिभाननां शुभाम् ।
यन्नाम्नि दत्तः सजनध्वनेः परः,
पित्रा कुमारी निनदो विराजते ॥ ४१२ ॥

इस राणी के गर्भ से प्रथम श्रेष्ठ कन्या जन्मी जिसका नाम इसके पिता राजा अक्षयसिंह जी ने सजनकुमारी रक्खा ॥४१२॥

१८३७

२१—वर्षेऽथ वेदेपुनवेन्दुसम्मिते,
प्रादात् पितेमां निजतातसम्मतेः ।
संभूषितां भूवरपालवर्म्मणे,
श्रीमत्करोलीपतयेऽरिमर्द्दिने ॥ ४१३ ॥

राजा अक्षयसिंहजी ने अपने पिता की सम्मति से सं० १९५४ वि० में सजनकुमारी का विवाह करोली के राजा भँवरपाल सिंह के साथ कर दिया ॥४१३॥

२२—अस्मिन्विवाहोत्सव आनिमन्त्रिताः,
भूपाः समाजग्मुरनेकशो वराः ।
सवर्द्धयतः प्रियतः मिथोऽर्चिताः,
ऊपुर्विवाहेऽथ गताः समर्चिताः ॥ ४१४ ॥

इस विवाहोत्सव में बहुत से राजा आदर-पूर्वक बुलाये गये थे, जो प्रेम-पूर्वक समर्चित होकर प्रसन्नता से निज राज्य को लौटे ॥४१४॥

२३—अस्याः कुमार्य्या जनुषः परं शुभे,
१९४३
त्र्याम्नायनन्देन्दुमिते सुवत्सरे ।
गौरे तिथौ श्रावणिकार्ज्जुने विधौ,
सा प्रासविष्टामरसिंहमात्मजम् ॥४१५॥

इस राजकुमारी के पश्चात् सम्वत् १९४३ विक्रमी के श्रावण शुक्ला ३ चन्द्रवार को राजा अमरसिंहजी का जन्म (पूर्वोक्त द्वितीय राणी के गर्भ से) हुआ ॥४१५॥

२४—कन्यां ततो दिग्रथनामधेयिका,
सूतेस्म सेय जनकः सुतामिमाम् ।
रीत्योणयारापतये श्रुतेरदात,
नीत्यब्धिचन्द्रायगुमानवर्म्मणे ॥४१६॥

पश्चात् इसी राणी के गर्भ से दशरथकुमारी जन्मी, जिसका विवाह उणयारा के स्वामी गुमानसिंह के साथ वेदोक्त विधि से हुआ ॥४१६॥

२५—चौहानिकाऽस्य प्रमदा तृतीयकाऽऽ-
सीत् पौत्रिका साभयसिंहवर्म्मणः ।
खर्ज्जूरहट्टाधिपतेर्महामतेः,
पुत्री तु सोमेश्वरदत्तवर्म्मणः ॥४१७॥

राजा अक्षयसिंहजी की तीसरी राणी खजूराहट के पति सोमेश्वरदत्त सिंह की पुत्री तथा अभयसिंह की पोती थी ॥४१७॥

२६—अस्यां सुता कृष्णकुमारिकाऽभवत्,
प्रादादिमां पूर्ण सुधांशुभाननाम् ।
भ्राता सतीं बाहुरसिंहवर्म्मणे,
राघोगढेशाय विधानतः श्रुतेः ॥४१८॥

इस राणी के गर्भ से कृष्ण-कुमारी हुई, जिसका विवाह इसके भ्राता राजा अमरसिंहजी ने राघोगढ़ के राजा बाहुरसिंह जी के साथ विधिपूर्वक किया ॥४१८॥

१९६५
२६—बाणेऽङ्गनंदेन्दुमितेऽथवत्सरे,
पौषासिते शक्रमिते तिथौ कुजे ।
एनं जहारांतक आभवार्णवात,
मत्तेभराट् पद्ममिवाम्बुराशितः ॥४१६॥

अत्यन्त दुःख है कि इस धर्म्मात्मा राजा अक्षयसिंह जी को सं० १९६५ वि० के पौष कृष्णा १४ मंगलवार को काल ने संसार सागर से इस प्रकार उठा लिया जैसे मस्त हाथी तालाब से कमल को उठा लेता है ॥४१९॥

२७—गोत्रासुराह्वस्य सुराधरापते-
स्तत्रापि वेदार्थविदोऽधिका हरेः।
प्राणादपिः प्रेष्ठतमोऽस्य सन् नृपः,
नीतिः किलासीद्व्यवहारपद्धतिः ॥४२०॥

ये राजा ब्राह्मणों को देवता तथा उनमें से वेदवक्ताओं को विष्णु-स्वरूप समझते थे और धर्म्म को प्राणप्रण से निभा कर नीति-मार्ग गामी थे ॥४२०॥

॥ इति द्वादश पर्व समाप्त ॥

— ❀ —

त्रयोदश पर्व ।
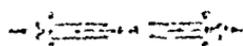
॥ १२ ॥ राजा अमरसिंह ।

(सं० १९६५- वि०)

१—सिंहासनं स्वर्णमयं गुरोरयं,
संप्राप्य वीरोऽमरसिंह उज्वलम् ।
राजाधिराजोवरिवर्त्ति संप्रति,
जीव्यात् समानां शतमेप सद्रतिः ॥४२१॥

राजा अजयसिंह जी के पश्चात उनके राजसिंहासन पर वीरवर राजा अमरसिंह जी विराजे । परम पिता जगदीश्वर से प्रार्थना है कि "ये सज्जन-प्रिय राजा चिरायु होवें" ॥४२१॥

१९६५

२—इष्वङ्गनंदाब्जमिते हि वत्सरे,
माघस्य शुक्ले मुनिसंख्यके तिथौ ।
राज्याभिषेकोऽस्य गुरावभून्मुदा,
तस्मिन्दिनेऽदुर्जनता उपायनम् ॥४२२॥

संवत् १९६५ वि० के माघ शुक्ला ७ गुरुवार को आनन्द पूर्वक इनका शुभ राज्याभिषेक हुआ, और उसी दिन प्रजा ने अनेक प्रकार की भेट अर्पण की ॥४२२॥

३—एनं युवानं मृगराजविक्रमं,
बालार्धभाभ कमनीय दर्शनम् ।
वीरं प्रजारञ्जनतत्पर नव,
दृष्ट्वा प्रजा भूपमनन्दिपुः परम् ॥४२३॥

प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी सिंह-तुल्य पराक्रमी, प्रजारंजक, सुन्दर, नवीन इस वीर राजा को देख कर प्रजा अत्यन्त आनन्दित हुई ॥४२३॥

१९६७
४—सप्ताङ्कनन्देन्दुमितेऽथ वत्सरे,
भाद्रस्य कृष्णे सुदिने गजादिकान् ।
मेवाडनाथेन सदैवचक्ररान्
सप्रेषितान् सप्रसमीक्ष्य सत्वरम् ॥४२४॥

५—तिथ्यां दशम्यां सुमहामहेन तान्,
स्वीकृत्य पश्चात्समगादुदेपुरम् ।
श्रीमेदपाटाधिपमन्त्रिणा समम्,
भाद्रस्य शुक्ले मुनिसमिते तिथौ ॥४२५॥

(युग्मम्)

सदा की भाँति नियमानुसार महाराणा जी ने इनके राज-तिलक के उपलक्ष्य में हाथी आदि भेजे, उन्हें स० १९६७ वि० के भाद्रपद मास की कृष्णा दशमी को उत्सव-पूर्वक स्वीकार कर के राणा जी के मन्त्री के साथ भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को उदयपुर पधारे ॥४२४।४२५॥

६—श्रुत्वा समायातमथैनमार्यकम्,
भूपेंद्रराडार्यविकर्त्तनोद्भुतम् ।
पुर्य्या वहिर्याभिमुखेऽर्कगोपुरात्,
दूरेऽस्ति वापी समगाद्धि तत्र सः ॥४२६॥

राणा जी इनका आगमन सुन के सन्मानार्थ सूर्य पोल द्वार के सन्मुख की बाहरी वापी तक समारोह पूर्वक सामने आये॥२२६॥

७—अस्याः शिरोभाग समीपभूस्थले,
स्निग्धासनोच्चैलसमुत्तरास्तृते ।
आभ्यां तदाकारि समं पदार्पणम्,
त्यक्त्वा हि याने युगपत्तदन्तिके ॥ ४२७॥

इस वापी के समीप गलीचे आदि से सुसज्जित स्थल पर इन दोनों ने एक साथ ही अपने अपने यान से उतर कर पदार्पण किया ॥४२७॥

८—बाह्वंशसंस्पर्शनपूर्वकं मिथः,
आलिंगनं प्रेमरसाभिवर्द्धनम् ।
तावद्विधायाशु विधानपूर्वकम्,
पृष्ट्वा शिवं देयमथोररीकृतम् ॥४२८॥

महाराणाजी ने प्रथम तो प्रेम से आलिंगन पूर्वक मिलकर कुशल पूछा और पश्चात् विधिपूर्वक अर्पण की हुई भेंट को स्वीकार किया ॥४२८॥

६—भूपेश्वरेशाय यदर्पितं तदा,
श्रीमत्कुमारेण जयंतमूर्त्तिना ।

तत्प्रत्यदात् स द्विगुणी कृत मुदा,
गोत्रेश्वरोऽस्मायथ तर्पयन् गिरा ॥४२९॥

राजकुमार प्रतापसिंह ने महाराणाजी को जो भेंट अर्पण की उसे राणाजी ने द्विगुणी करके मधुरवाणी से प्रेम दिखाते हुए पीछी प्रदान कर दी ॥४२९॥

१०—राजार्हचिह्नैः समलकृत महा-
राजेन्द्रचिह्नैः समलङ्कृतः स्वयम् ।
पुर्यां किलेन प्रनिवेश्य चाध्वनि,
विज्ञाप्य सौध समगादय ततः ॥४३०॥

पश्चात् महाराजाओं के चिह्नों से सुसज्जित महाराणाजी राज-चिह्नों से अलकृत राजा अमरसिंह जी को नगर में ले गये और स्वभवन को जाने की आज्ञा देकर स्वय राजभवन मे पधार गये ॥ ४३० ॥

११—पौरैः समस्तैरभिवन्दितोऽर्थिभि,
र्माङ्गल्यकुम्भार्पितकाभिरध्वनि ।
स्त्रीभिर्न्यगच्छत् स्वभिनन्दितः पुरम्,
मानार्थदानादिभिरर्च्चयस्तु तान् ॥४३१॥

नगर-प्रवेश के समय नागरिक जन और याचकों ने वन्दना की तथा स्त्रियों ने मागलिक कलश आदि से अभिनन्दन किया और राजा साहब ने दान, मानादि से यथायोग्य उनका सत्कार किया ॥ ४३१ ॥

१२—एवं समारोद्धतयैत्य हर्म्यकम्,
स्वीयं ततोऽप्यार्य्यरवेः सुसत्कृतान्।
भृत्यान् विसृज्योन्नवतिं सुवासरान्,
तत्रैप नीत्वा समगात्स्वराष्ट्रकम् ॥ ४३२॥

इस प्रकार समारोह पूर्वक अपने महल में गये और राणा जी के सेवकों को यथायोग्य पारितोपिक देकर संतुष्ट किया तथा कुछ समय रह कर अपने राज्य में पीछे पधारे ॥४३२॥

१३—वीरं निजस्वामिनमागतं चिरात्,
श्रुत्वाथ कृत्वा निलयान् सुसँस्कृतान्।
नेत्रैर्निपीयोन्निमिषैर्मुहुर्मुहु-
रेनं न तृप्तिं सुतरामगुः प्रजाः ॥ ४३३ ॥

वनेड़ानिवासी प्रजाजन ने वहुत दिनो के पश्चात अपने स्वामी का आगमन सुनकर भवन आदि को सजाया और उन्हे (राजा अमरसिंह जी को) देख कर अत्यन्त प्रसन्नहुए ॥४३३॥

१४—पौरैः समस्तैरभिवन्दितो द्विजै-
र्दत्ताशिरिद्धः श्रुतिपारगैर्वुधैः।
चिन्हैर्बृहद्भूमिभुजां स्वलंकृतः,
सृत्याविशत्सुन्दरसिक्तया पुरम् ॥ ४३४ ॥

जिस समय राज-चिन्ह-युक्त राजा साहव ने सुन्दर छिड़काव किये हुए मार्ग से नगर में प्रवेश किया तव समस्त नागरिकों ने सादर प्रणाम किया और वेदपाठी पण्डितों ने शुभाशिर्वाद दिया ॥४३४॥

१५—हर्म्योपरिष्ठ प्रमदाकरच्युतै-
लाजाक्षतैरध्वनि पुष्पमिश्रितैः ।
आकीर्य्यमाणो गमनेन रोचयन्,
प्रोत्केतुमिंद्रोऽमरपत्तनं यथा ॥ ४३५ ॥

१६—माङ्गल्यकुम्भान्मणीशिरस्थितान्,
आपूरयन्द्रव्यसुवृष्टिधारया ।
मार्गेऽप्ययं मेरुमिवामरेश्वरः,
दुर्गं शतघ्नी ध्वनिपूर्णमाविशत् ॥ ४३६ ॥

(युग्मम्)

जब हवेलियों पर चढी हुई रमणियों ने पुष्प मिले हुए लाजा-क्षतों की वर्षा मार्ग मे की, तो ध्वजा-पताका युक्त नगर की शोभा इस प्रकार चढी जिस प्रकार इन्द्र के प्रवेश समय अमरावती की बढती है। मार्ग मे रमणियों के शिर-स्थित कुम्भों में द्रव्यवर्षा करते हुए राजा अमरसिंहजी ने तोपो की ध्वनि से गुञ्जायमान दुर्ग में इस प्रकार प्रवेश किया जैसे सुमेरु पर्वत पर अमरेश (इन्द्र) पधारते हैं ॥४३५-४३६॥

१७—एकैवराज्यस्ति किलास्य सुप्रभा,
रत्नेलवंशप्रभवातिसुव्रता ।
पुत्री शुभेय रघुनाथवर्म्मणः,
श्रीसर्गुजेशस्य महामहीभुजः ॥ ४३७ ॥

इनके चंद्रवंशी रघेलिनी एक ही राणी है जो सर्गुजा के स्वामी रघुनाथसिंह की पुत्री है ॥॥४३७॥

१०७७

१८—वर्षेऽथ सप्तेभनवेन्दुसम्मिते,
पौषार्जुनेऽष्टप्रमिते तिथौ शनौ ।
अस्यास्सुकुक्षेः परतापकेशरी,
श्रीमत्कुमारोऽजनि नीति वारिधिः ॥४३८॥

इस राणी की कुक्षि से सं० १९५७ वि० के पौष शुक्ला अष्टमी शनिवार को नीति-विशारद राजकुमार प्रतापसिंहजी ने जन्म लिया ॥४३८॥

१०६५

१९—वर्षे ततो बाणरसाङ्कभूमिते,
मार्गस्य कृष्णे मुनिसम्मिते तिथौ ।
आदित्यवारे खलु पैतृभे शुभे,
श्रीमानसिंहं स्वसविष्ट चात्मजम् ॥४३९॥

पश्चात् सं० १९६५ वि० के मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी रविवार को राजकुमार मानसिंह का जन्म हुआ ॥४३९॥

१९७४

२०—पश्चात्ततो वेदहयाङ्कभूमिते,
श्रीविक्रमीये नभसोऽसिते दले ।
भौमान्विते भूतदिने हिरौद्रभे,
गोपालसिंहं स्वसविष्ट मित्रभम् ॥ ४४० ॥

इनके पश्चात् स० १९७४ वि० के श्रावण कृष्णा चतुर्दशी भौमवार के दिन सूर्यवत् प्रतापी राजकुमार गोपालसिंह जन्मे॥४०४॥

२१—ग्रामाद्बहिः पित्रभिधाचणस्तत:,
कासारसेतुं निकषोर्ध्वभूस्थले ।
विद्यालयः सर्वमनोऽभिरञ्जकः,
प्राकार्य्यनेनातिधनव्ययेन सन् ॥ ४४१ ॥

राजा अमरसिंह जी ने अपने पिता अक्षयसिंहजी के नाम से सरोवर-सेतु के समीप सुन्दर विद्यालय स्थापित किया, जिसमें अच्छा द्रव्य व्यय किया जाता है ॥४४१॥

२२—व्यधस्थापि कन्याध्ययनालयोवरो,
ग्रामेऽत्र कन्याः खलुसर्ववर्णिकाः ।
विद्यां लभन्ते निजधर्म्मशिक्षया,
सार्द्धं सुरीत्या गृहकार्य्यशिक्षया ॥ ४४२ ॥

इन्होंने बनेडा में कन्या पाठशाला भी स्थापित की है जिसमें सब जातियों की कन्याएँ गृह-कार्य्य और धर्म्मकी शिक्षा सहित विद्या पढती हैं ॥४४२॥

२३—पूर्वोत्तरस्यां दिशि योऽस्ति पत्तनात्,
पद्माकरोऽथोदयसागराख्यकः ।
आप्यायि तत्सेतुरनेन मुन्नता,
चूर्णाश्मभित्त्या सह दीर्घया दृढा ॥४४३॥

नगर के ईशानकोण में स्थित रमणीय उदय सागर तालाब को इन्होंने बढा कर उसको बाँध कर पक्का बनवाया ॥४४३॥

२४—येन प्रजानां सततं कृता सदा,
रक्षा मनोभाषितकायकर्म्मभिः ।
किं तस्य यज्ञैस्तपसा सुरार्चनैः,
सिद्धांत एषोऽस्ति परोऽस्य निश्चितः ॥४४४॥

राजा अमरसिंहजी का यह सिद्धान्त है कि "जिस राजा ने मन, वचन और शरीर से सदा प्रजा का पालन किया हो उसे यज्ञ, व्रत, तप और देव-पूजा आदि की कोई आवश्यकता नहीं, अर्थात् प्रजापालन ही राजा का प्रधान धर्म है ॥४४४॥

२५—चारैः स्वराज्यस्य सदा परीक्षणम्,
गुप्तैस्तथाप्ताचरणाभिसेवनम् ।
कृत्यं प्रजारञ्जनमस्ति सर्वथा,
राज्ञां परं चेति वचोऽस्य सर्वदा ॥४४५॥

इनके मुख से सदा यह पवित्र वचन निकला करता हैं कि "राजाओं का परम कर्त्तव्य है कि वे गुप्तचरों द्वारा देश व्यवस्था जान कर आप्त-पुरुषों के द्वारा उसकी रक्षा करें और प्रजा को सदा प्रसन्न रखने का ध्यान रक्खें ॥ ४४५ ॥

२६—सम्राज्यहो पञ्चमजार्जकाख्यके,
श्रीभारतोर्व्यावरयाङ्गलेश्वरे ।
नीतिप्रिये शास्तरि युद्धमाङ्गल-
फ्रांसेटलीरूस महामहीभुजाम् ॥ ४४६ ॥

२७—सार्द्धं तुरुष्केश्वरजाम्र्मनेयकैः,
संहारि विश्वस्य च कूटमूर्त्तिमत् ।

आसीन्महाघोरतर प्रजार्त्तिदं,
संप्लावनं भूपपदाधिमानिनाम् ॥ ४४७ ॥
(युग्मम्)

भारत के नीतिमान् सम्राट् और इङ्गलैंड के स्वामी पचम जार्ज के शासन-काल में इङ्गलैंड, फ्रान्स, इटली और रूस के सम्राटों का टरकी और जर्मनी के साथ विश्वसहारक और भारी कूटनैतिक युद्ध हुआ, जिसमे प्रजा ने बहुत कष्ट उठाया और बहुत से राजाओं का अभिमान चूर चूर हो गया ॥४४६।४४७॥

२८—अस्मिन् रणे विश्वमहीभुजोऽखिला:,
राष्ट्राणि हित्वाष्टतथानवान्यरम् ।
एकी प्रभूता: स्वभवन् किलाङ्गल-
ध्वजातले वैरिकुलाजिघांसया ॥ ४४८ ॥

इस विश्वव्यापी सग्राम में आठ नौ राज्यों के अतिरिक्त सपूर्ण राज्य ब्रिटिश राज्य के पक्ष में आ गये थे ॥४४८॥

२९—कूटास्त्रक युद्धमभूदिद पर-
मस्मान्नृपा आङ्गलपक्षसंस्थिता: ।
स्थातु द्विपोऽग्रेऽत्र न शेकुरार्त्ता,
नागा यथा सिंहचपेटार्दिता: ॥ ४४९ ॥

इस युद्ध में शत्रु ने बहुत से कूट अस्त्रों का प्रयोग किया था अत ब्रिटिशपक्षीय सेनाओं ने उसके सन्मुख ठहरने मे भारी कष्ट उठाया, जैसे सिंह की चपेट के समुख हाथी उठाता है ॥४४९॥

३०—दृष्ट्वाथ वीर्य्याण्यतिमानुषाण्यलं,
युद्धे रिपोस्तानि सुवीरमानिनः ।
चामर्ष्यमाणाः प्रभुकार्य्यतत्परा,
वीरोत्तमा भारतभूमिसत्सुताः ॥ ४५० ॥

३१—प्रादू रणाग्नाविह लक्षशो मुदा,
प्राणाहुती र्वीरतया सहाखिलाः ।
द्रव्याहुतीः स्वामिजयेप्सया प्रजा,
बद्ध्वोदरं पट्टिकया क्षुधातुरम् ॥ ४५१ ॥

(युग्मम्)

रणाङ्गण में शत्रु के ऐसे अमानुषीय पराक्रम के कार्य देख कर क्रोध में आये हुए स्वामि-भक्त वीर भारतनिवासियों ने इस युद्ध में अपने स्वामी की विजय कामना से वीरों की प्राणाहुति ही केवल नहीं दी, प्रत्युत क्षुधार्त्त पेट के पटी बाँध कर असंख्य द्रव्य भी समर्पण किया ॥४५०।४५१॥

३२—निर्ज्जित्य देवैरपि दुर्ज्जयं रिपुं,
मालात्यनर्घ्या विजयस्य शाश्वती ।
श्रीभारतेशस्य गले समर्पिता,
सैभिः सुराणामपि याति दुर्लभा ॥ ४५२ ॥

भारतीय वीरों ने देवताओं से दुर्जेय शत्रु को जीत कर भारत सम्राट् पञ्चम जार्ज के कंठ में वह जयमाला पहनाई जो देवताओं को भी दुष्प्राप्य है ॥४५२॥

३३—घोरेऽत्रयुद्धे गमनेच्छया तदा,
चीरेण राज्ञामरसिंहवर्म्मणा ।
विज्ञप्तिपत्रं हि बृटीशमन्त्रिणं,
प्रत्यर्बुदाद्रिस्थमिदं प्रणोदितम् ॥ ४५३ ॥

इस युद्ध में जाने के लिए राजा अमरसिंह जी ने आबू पहाड़ पर बिटिश मन्त्री (चीफ कमिश्नर साहब) के पास निम्नांकित प्रार्थनापत्र भेजा ॥४५३॥

३४—आज्ञां विभो ! देहि समुत्सुकोस्म्यहं,
गन्तुं रणे मे विनय विधेहालम् ।"
इत्थं निवेद्यासनरैस्तथा धनै-
र्वीरैरदात्तत्प्रधने सहायताम् ॥४५४॥

'हे मन्त्रिवर ! इस युद्ध में जाने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ अत आज्ञा प्रदान करिए' । इस पत्र के साथ बहुत सा द्रव्य तथा वीर सैनिक भी सहायतार्थ भेजे थे ॥४५४॥

३५—दृष्ट्वे दर्शा भक्तिमनिन्दितां परां,
सम्राजि राज्ञोऽस्य बृटीशमंत्रिणा ।
तुष्टेन चास्मायतिकीर्त्तिसूचकं,
प्रादायि पत्रं बहुमानमण्डितम् ॥४५५॥

भारत सम्राट् में इनकी ऐसी उत्तम भक्ति देख कर ब्रिटिश मन्त्री (एजंट साहब) बहुत प्रसन्न हुए और अत्यन्त आदरपूर्वक यश से पूर्ण धन्यवाद-पत्र भेजा ॥४५५॥

३६—संस्थापितः कर्षकवित्त वृद्धये,
कोषः स्वराज्ये कृपिशब्दपूर्वकः ।
लान्त्यल्पवृद्ध्या द्रविणं ततः प्रजाः,
कूपादिकानां खननाय सांप्रतम् ॥४५६॥

इन्होंने किसानों के लाभ के लिए एक कृपि-कोप स्थापित किया है, जिसमें से कूआ खुदवाने आदि के लिए थोड़े व्याज पर द्रव्य मिल सकता है ॥४५६॥

३७—कोशोऽपि तद्वज्जनतान्नवृद्धये,
धान्यस्य सम्यग्निहितोऽत्रकात्मनः ।
गृह्णन्ति वृद्ध्या जनतास्ततोऽल्पया,
धान्यानि वप्तुं च बहूनि भुक्तये ॥४५७॥

इसी प्रकार एक धान्य कोश भी स्थापित किया है, जिसमें से किसानों को खाने और बोने के लिये स्वल्प वृद्धि (वाढ़ी) पर अन्न दिया जाता है ॥४५७॥

३८—त्यक्ता इतः प्राक्करुणाब्धिमूर्त्तिना-
१९६८
नेनाष्टषण्खन्दकुसम्मितेऽब्दके ।
मुद्रा हिलक्षार्द्धमिता ऋणस्य चा-
देयाः सता याः प्रभुणा प्रजासु ताः ॥४५८॥

इन्होंने संवत् १९६८ विक्रमी मे कर आदि के पहले के ऋण में से प्रजा को एक लाख रुपये छोड़ दिये ॥४५८॥

३९—या विष्टयो दीनजनार्त्तिदाश्रुताः,
त्यक्ताः प्रजारञ्जनलिप्सुनामुना ।

नानाविधायस्तृण कृन्तनोत्तरे,
त्यक्त करस्तत्तृणभूस्थतस्य स ॥४५६॥

प्रजा की प्रसन्नता के लिए बहुत सी कष्टप्रद बेगारें और तृण भूमि के कर को भी त्याग दिया ॥४५९॥

४०—प्राग्यौवराज्येऽतिविशालमुत्तमम्,
सौध स्वनामांतनिवासनामकम् ।
प्राकारि रम्य ह्युपसौधशोभित-
मन्यानि सौधानि विपल्लिहानि च ॥४६०॥

इन्होंने युवराज अवस्था मे विशाल अमर-निवास तथा अन्य भी सुन्दर महल बनवाये ॥४६०॥

४१—ग्रामाद्बहिर्दक्षिणपूर्वगामुना,
दूरेऽस्ति या रम्यतरा सुवाटिका ।
तस्या स्थले भूरुहपंक्तिशोभिते,
प्राकारि सौध ह्युपचापिक वरम् ॥४६१॥

नगर के पूर्व दक्षिण मे अर्थात् अग्निकोण में स्थित तरुवरों से मण्डित बाग मे रमणीक महल भी इन्हो ही ने बनवाया है ॥ ४६१ ॥

११७८

४२—ग्रामस्य मध्येऽष्टहयाङ्कभूमिते,
वर्षेऽङ्गनानां च हिताय सुंदरम्,
प्राकारि विद्यासदन समुज्ज्वल,
राज्यास्य सत्या निजनामपूर्वकम् ॥४६२॥

उक्त राजकुमार का विवाह वेदोक्त रीति से लुनावाड़े के राणा वख्तसिंह की पोती के साथ संवत् १९७३ विक्रमी में हुआ ॥४६८॥

४९—सौलङ्किनी श्रीयुवराज्यसौ सुतां,
१९७७
प्रासूत सप्ताश्वनवेन्दुसम्मिते ।
वर्षेऽब्जभास्यां नभसोऽर्ज्जुनेदले,
मेनेव गौरीं भुजसम्मिते तिथौ ॥४६९॥

इस सोलंकिनी युवराज्ञी की कुक्षि से संवत् १९७७ वि० के श्रावण शुक्ला द्वितीया को कन्या-रत्न उत्पन्न हुआ ॥४६९॥

१९७८
५०—श्रीविक्रमीयेऽष्टहयाङ्कभूमिते,
प्रासूत सेयं पुनरात्मजां शुभाम् ।
चन्द्राननां कञ्जविशाललोचनां,
याम्ये तिथौ फाल्गुनिकार्जुनेतरे ॥४७०॥

संवत् १९७८ विक्रमी के फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को उपरोक्त युवराज्ञी ने पुनः द्वितीय कन्या को जन्म दिया ॥४७०॥

१९८०
५१—खाष्टाङ्कचन्द्रप्रमिते सुवत्सरे,
प्रासूत सेयं तनयं सुवर्च्चसम् ।
मार्त्तण्डवंशाब्धिविधुं च पौर्णिमा—
स्यां श्रावणे शुक्लदलेऽर्कवासरे ॥४७१॥

इसके पश्चात् सं० १९८० वि० के श्रावण शुक्ला पूर्णिमा रविवार के दिन सूर्यकुल-रूपी समुद्र को आह्लादकारी तेजस्वी कुमार का जन्म हुआ ॥४७१॥

५२—दृष्ट्वा मुखं नप्तु रथास्य भूपते-
रानन्दपूरो न ममौ मनस्यतः ।
द्रव्यस्य वृष्टिः प्रचुरा कृता तदा,
तृप्तास्तया सम् लघवौजना भृशम् ॥४७२॥

इस पौत्र का मुख देख कर राजा अमरसिंह को इतना हर्ष हुआ कि वह हृदय सागर में समा नहीं सका अतः प्रचुर द्रव्य वृष्टि के रूप मे बाहर विस्तीर्ण हो गया इससे प्रजा बहुत सतुष्ट हुई ॥ ४७२ ॥

५३—अस्याः कृतो नसृजनेरिषार्जुने,
भूयो महस्तत्रनिमन्त्रिता वराः ।
भूपाः समागुर्बहवस्तथा नराः,
श्रेष्ठास्त एतेन समर्चिताः समे ॥४७३॥

राजा साहब ने आश्विनमास में पौत्र जन्मोत्सव किया जिस में बहुत से राजा और प्रतिष्ठित सज्जन आये । उन समागत सज्जनों का यथायोग्य सत्कार किया गया ॥४७३॥

५४—अत्रोत्सवे भूमिसुराः सुभोजनैः,
सतर्पिता दीनजनाः स्ववृष्टिभिः ।
मित्राणि भृत्याश्च पुरोहितादयः,
सम्मानिता वस्त्रसुभूषणादिभिः ॥४७४॥

इस उत्सव में ब्राह्मण स्वादु मिष्टान्न से, दीन मनुष्य द्रव्य दान से और मित्र तथा भृत्य लोग वस्त्र तथा भूषण आदि से यथेष्ट सम्मानित किये गये थे ॥४७४॥

५५—माघेऽर्बुदस्थोऽथ वृटीशमन्त्रिराट्,
मेवाडसंस्थेन वृटीशमन्त्रिणा ।
सार्द्धं समागादिह संनिमन्त्रितः,
कृष्णे दले भूततिथौ समर्चितौ ॥४७५॥

इस उत्सव के निमित्त निमन्त्रित किये हुए राजपुताना के एजंट साहब (ए० जी० जी०) मेवाड़ के रजिडेंट साहब सहित माघ मास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन बनेड़े आये, उस समय उनका उचित स्वागत किया गया ॥४७५॥

१९८२

५६—बाह्वष्टनंदेन्दुमितेऽथवत्सरे,
सूतेस्म सेयं विधुभाननां सुताम् ।
ज्येष्ठेऽह्नितिथ्यां बुधवासरे शुभे,
कृष्णे दले कञ्जविशाललोचनाम् ॥४७६॥

इसके अनन्तर पूर्वोक्त युवराज्ञी के संवत् १९८२ वि० के ज्येष्ठ कृष्णा पञ्चमी बुधवार को पुनः एक कन्या जन्मी, जो दीर्घ नेत्रा और अत्यन्त रूपवती है ॥४७६॥

॥ इति तृयोदश पर्व समाप्त ॥
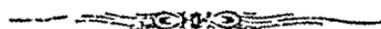
चतुर्दश-पर्व

भौगोलिक परिचयादि मिश्रित विषय

१ भौगोलिक परिचय।

१—ख्यात बनेडाख्यमिद निरक्षक—
स्थानादुदीच्यां दिशि पञ्चविंशके।
अक्षांश इष्विन्दु कलान्वितेङ्गवि—
लिसोत्तरेभूधरकुक्षिसंस्थितम् ॥४७७॥

बनेड़ा नगर निरक्षस्थान (विषुवन् रेखा) से उत्तर की ओर २५ अक्षांश १५ कला और ६ विकला पर सुन्दर पर्वत श्रेणी में स्थित है ॥४७७॥

२—लङ्का कुमारी मथकाञ्च्यवन्तिके,
गार्गं कुरुक्षेत्रहिमालयादिकान्।
लेखा स्पृशन्ती ध्रुवमेति या ध्रुवं,
सा मध्य-रेखा गदिता बुधैर्जिनैः ॥४७८॥

जो रेखा लंका, कन्याकुमारी, काँची, उज्जैन, गर्गराट्, कुरुक्षेत्र और हिमालय को स्पर्श करती हुई उत्तर ध्रुव पर जाती है, उसको भारत के विद्वान् भूमध्यरेखा (प्रथम मध्यान्ह रेखा) कहते हैं ॥४७८॥

३—तद्राजितः पश्चिमकेऽवतिष्ठते,
देशान्तरे पादयुतेऽङ्जसम्मिते ।
पद्मार्चितैर्ग्रामवरोयमुच्चकै-
र्हर्म्यैः पयः फेननिभैः सुमण्डितः ॥४७९॥

सुन्दर दुग्धफेन के समान उज्वल भवनों से सुशोभित पूर्वोक्त वनेड़ा ग्राम इस भूमध्यरेखा से पश्चिम देशान्तर के १ अंश और १५ कला पर स्थित है ॥४७९॥

४—आङ्गलस्थितायाः क्षितिमध्यराजितो-
वेदाश्वसंख्येभ्रचतुष्कलोत्तरे ।
देशान्तरे तिष्ठति सैष पौर्विके,
सौधैर्गिरिस्थैः खलिहैः सुशोभितः ॥४८०।

नूतन भौगोलिक मानचित्रों में इंगलैंडस्थ भूमध्य-रेखा (ग्रीनविच प्रथममध्यान्हरेखा) से पूर्व देशान्तर के ७४ अंश ४० कला पर वनेड़ा नगर दृष्टिगत होगा ॥४८०॥

५—अस्त्यक्षभायाद्वयं शराङ्गुलं,
प्रत्यंगुलं चाब्धिपयोधि सम्मितम् ।

ससेपत्रो.त्त्रोदधयो नवेन्दवः,
खण्डानि सन्त्यत्र चरस्य पत्तने ॥४८१॥

इस नगर में पलभा का प्रमाण ५ अगुल तथा ४२ प्रत्यगुल का है और चर खड़ा ५७ । ४५ । १९ है ॥ ४८१ ॥

६—स्यादंगुल दन्तिमितैर्यवोदरैः,
षड्भिर्विनस्ति द्विगुणैस्तथाड्गुलैः ।
ते द्वे करोऽभ्राब्धिरसद्विसख्यकैः,
क्रोश करैरत्रमया प्रवर्णितम् ॥ ४८२ ॥

आठ यवोदर (जो का पेटा) का एक अगुल, बारह अगुल का एक बालिस्त दो बालिस्त का एक हाथ और २६४० हाथ का एक कोस मैंने इस ग्रथ मे माना है जो वर्त्तमान के अगरेजी मील के बराबर होता है ॥ ४८२ ॥

७१
७—क्रोशान्यवन्यरवमितानिपत्तनां,
दिश्युत्तरस्यां विदितोऽस्तिपुष्करम् ।
१८०
याम्यां खनागेन्दु मितान्यवन्तिका,
क्रोशानि चेतोऽस्त्यपवर्गदा पुरी ॥ ४८३ ॥

बनेडा नगर से तीर्थराज पुष्कर उत्तर की ओर ७१ कोस मोक्षदायिनी अवन्तिका (उज्जैन) नगरी १८० कोस दक्षिण में स्थित है ॥ ४८३ ॥

८—चित्तोड़दुर्गं गिरिराजसंस्थितं,
विख्यातमूर्व्यामरिवर्गदुर्ज्जयम् ।
४१
क्रोशेषुगोत्राश्रुतिसम्मितेषु यद्,
याम्यां दिशीतोऽस्ति नगालिमण्डितम्॥४८४॥

सुरम्य पर्वतमाला मण्डित और शत्रुओं से दुर्जेय प्रसिद्ध चित्तौड़ गढ़ यहां से ४१ कोस की दूरी पर दक्षिण में स्थित है ॥ ४८४ ॥

९—राष्ट्रस्य भूक्षेत्रफलं सदर्थदं,
बह्वाकरं क्रोशशतत्रयात्मकम् ।
२५०
अभ्रेषुसंख्योत्तरमस्य सोर्वरं,
प्रोक्तं मया वर्गविधानतः स्फुटम् ॥४८५॥

इस राज्य का क्षेत्रफल २५० वर्ग कोस (मील) निश्चित किया गया है वही ठीक प्रतीत होता है। यह बहुत उपजाऊ भूमियुक्त है ॥ ४८५ ॥

११२
१०—ग्रामाः सखेटा द्विमहीन्दुसम्मिताः,
सन्त्यत्रराष्ट्रे सुतडागसंयुताः ।
अश्वत्थजम्बू पिचुमन्दतिंतड़ी-
मन्दारखर्जूरवटादिशोभिताः ॥ ४८६ ॥

इस रमणीक राज्य में अनेक सरोवर और वट, पीपल, जामन, इमली, नीम, खजूर तथा बकायन आदि नाना प्रकार के वृक्षों से मण्डित ११२ छोटे बडे ग्राम हैं ॥ ४८६ ॥

११—ह्रादिन्यभावादपि राष्ट्रकेऽत्रतु,
कासारकूपप्रचुरप्रभावतः ।
सर्वा कृषिः स्यान्नहि देवमात्रिका-
न्यामावृष्टेपेण्यां प्रविहाय केवलाम् ॥ ४८७॥

यहाँ नदियाँ नहीं हैं तो भी कूप तालाब आदि की अधिकता के कारण केवल बरसाती खेती को छोड़ कर शेष सब प्रकार की कृषि आनन्द-पूर्वक होती है (बरसाती वर्षाधीन है) ॥ ४८७॥

६३२८
१२—राष्ट्रेऽष्टदृग्वायुसखाद्रसम्मिता,
संख्या गृहाणामिह कास्तिसम्प्रति ।
तद्वत्प्रजानां जनमात्रिकापि या,
२६८६६
संख्याकलाब्धद्रभुजात्मिकास्ति सा ॥४८८॥

इस राज्य के घरों की संख्या ६३२८ और जन-संख्या २६८६४ है ॥ ४८८ ॥

१३—ग्रंथस्य भूयस्त्वभयाद्धि धीमतां,
वीर्याणि भीमादिमहामहीभुजाम् ।
संक्षिप्ततोऽलेखिपुरत्र कोविदा,
ग्रंथे सुवीरव्रतधारिणां मया ॥४८९॥

ग्रन्थ के विस्तार के डर से बुद्धिमान् प्रतापी श्रीभीमसिंहादि राजाओं का चरित्र मैंने संक्षेप से वर्णन किया है ॥ ४८९ ॥

२--इतिहास प्रयोजनम् ।

१४—देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य गौरवं,
जन्मानि कर्माणि परावराणि च ।
पश्यन्त्यतीतान्यखिलानि पण्डिता,
विद्याः पुरावृत्तदशाखिलाः कलाः ॥४९०॥

इतिहास में विद्वान लोग देश, राज्य, और वंश का गौरव, उत्पत्ति, विद्या, प्राचीन-शिल्प तथा पूर्वापर कामों को भली प्रकार देख सकते हैं और संपूर्ण दशा का अनुमान कर सकते हैं ॥ ४९० ॥

१५—यस्यात्र राष्ट्रस्य कुलस्य शाश्वतं,
लोके पुरावृत्तमजस्रमुज्वलम् ।
जागर्त्ति विज्ञा ! भुवि सैव जीवति,
चान्योऽस्ति जीवन्नपि संस्थितोऽखिलः॥४९१॥

जिस राष्ट्र और वंश का उज्वल इतिहास इस संसार में निरन्तर चमकता है वही जीवित है अन्यथा जीता हुआ भी मृत तुल्य है ॥४९१॥

श्री पं० नगजीरामजी शर्मा राजगुरु बनेड़ा

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

३--राजा और प्रजा को उपदेश ।

१६--राजन्! राष्ट्रमिदं प्रणन्दतु चिरं राष्ट्रंह्यवेहीष्टदम्,
राष्ट्रेणास्ति भवाननेन नृपराड्राष्ट्राय देह्यादरम् ।
राष्ट्राद्भूतिरियंहि तेऽस्ति सदने तातोऽसिराष्ट्रस्य राट्,
राष्ट्रे प्राणमतिं विधेहि विमलां भोराष्ट्र नाथ भज॥४९२॥

हे राजन् ! (अमरसिंह जी) आपका यह राज्य चिरकाल पर्य्यन्त समृद्ध रहे और आप इसे कल्पवृक्ष (अर्थात् मनोरथ-पूर्त्ति का साधन) समझें । क्योंकि आप इसी के कारण राजवन्द्य हैं, अत इसका सदा सम्मान करें, और आप के भवन मे राज्य लक्ष्मी इस राज्य ही से है तथा आप इसके धर्म्म-पिता हैं अत प्राणवत् रक्षा करनी चाहिए । हे राष्ट्र निवासियो ! तुम भी अपने स्वामी (राजा) को पिता के समान समझ कर उनका आदर करो ॥ ४९२ ॥

१७--राज्ञा कायवचोमनोभिरनिशं राष्ट्रस्य रक्षा कृता,
नीतिज्ञेन बुधेन येन विधिना तेनाऽत्र लोके कृता ।
शास्त्रोक्ताखिलसत्क्रिया सह मखैः किंतस्य तीर्थैरपि,
किं दानैःसकलैस्तपोभिरखिलैर्योगेन यज्ञैरपि॥४९३॥

जिस नीति-विशारद विद्वान राजा ने विधि-पूर्वक मन, वचन और शरीर से सदा राज्य की रक्षा की, उसने इस ससार मे बड़े बड़े राजसूयादि यज्ञो सहित सपूर्ण शास्त्रोक्त सत्कर्म सपादन कर

लिये। उसे तीर्थ सेवन, दान, तप, योग और यज्ञ की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि राजा के लिए सब सत्कर्मों से अत्यावश्यक है प्रजापालन और राष्ट्र सेवा ॥ ४९३ ॥

१८-गोत्रां कामदुघां दुधुक्षसितरां वत्संहि तस्याःप्रजा-
वर्गं नीति दृशा पुपोष सततं पुत्रान्यथा स्वान्प्रजाः ।
पुष्टे वत्स इयं वरान दितिजालभ्याननर्घ्योञ्ज्लुभान्,
कामानाशु ददाति कीर्त्तिमतुलां भोगाँस्तथा दुर्लभान्
॥ ४९४ ॥

यदि आप पृथिवी रूपी कामधेनु को दोहन करने की प्रबल इच्छा रखते हैं, तो इसके वत्सस्वरूप प्रजा का पुत्रवत् पालन करिए, क्योंकि वत्स के पुष्ट और संलालित रहने से यह आपको देव-दुर्लभ उत्तम भोगों को तत्काल अवश्य प्रदान करेगी ॥४९४॥

१९-राज्ञां कृत्यमिहास्ति तद्धि परमं सद्यत्प्रजारञ्जनम्
त्यक्त्वाऽतोऽव्यसनानि राष्ट्रमखिलं कुर्य्यान्नृपःसज्जनम्।
तत्रापि प्रथमं स्वयं नयपरो भूत्वा ततः स्वात्मजान्,
कुर्य्यान्नीतिमतोऽथ सर्वसचिवान्भृत्याँस्ततो राष्ट्रियान्
॥ ४९५ ॥

राजा का परम कर्त्तव्य है कि प्रजा को प्रसन्न रखना; क्योंकि प्रजा का रंजन (प्रसन्न) करने ही से तो राजा कहलाता है। (रंजयति इति राजा इस व्युत्पत्ति से) जो राजा अपनी प्रजा को प्रसन्न रखना चाहे वह सब राष्ट्र को सज्जन बनावे; क्योंकि

सज्जनता ही प्रसन्नता का मूल-मंत्र है। पहले स्वय राजा न्याय परायण बने पश्चात् अपने पुत्र, सचिव, अन्य भृत्य तथा प्रजा को न्यायप्रिय बनावे ताकि सब राष्ट्र सज्जन बन जाय ॥४९५॥

२०-राष्ट्रं रक्षति योऽखिलं तनुजवद्राजा प्रपश्यन्निजं,
राजानं निजतातवद्यदि सदा राष्ट्रं प्रजानाति यत्।
किं चिंतामणिना हि तस्य नृपतेरन्यैः सुरत्नैश्च किम्,
कल्पाख्येन दिवौकसां विटपिना किं कामधेन्वाथ किम्
॥ ४९६ ॥

जो न्यायपरायण राजा अपने राष्ट्र की पुत्रवत् रक्षा करता है और राष्ट्र जिसे पिता के तुल्य अपना रक्षक समझता है उसके लिए चिन्तामणि आदि उत्तम रत्नों की क्या आवश्यकता है, यहाँ तक कि कल्पवृक्ष और काम-धेनु भी अनावश्यक है। क्योंकि ऐसे राजा के लिए उसका राष्ट्र ही सर्व मनोरथ-पूरक है ॥४९६॥

४--ग्रंथ समर्पण।

२१—इदं हि वीरवंशवर्णनाघ्यरत्नक वरं,
सुवर्णकाण्डरश्मिकं सुशब्दसूत्रगुम्फितम्।
गले न कस्य शोभते प्रयोगभर्ममण्डित,
यशस्करं सुभीमवंशकीर्त्तिशाणसंस्कृतम्
॥४९७॥

यह वीरवंश वर्णन (ग्रन्थ) रूपी बहुमूल्य रत्न किस विद्वान् के कंठ की शोभा न बढायेगा, जो सुवर्ण पर्व की किरणों से

चमकदार तथा सुन्दर शब्दरूपी सूत्र में पिरोया हुआ है। क्योंकि श्रीमान राजा भीमसिंह जी के वंश के यशरूपी शाण पर इसे चमक दी गई है; अतः यह तो शोभा के साथ साथ यश को भी फैलानेवाला है ॥४९७॥

२२—शश्वत्पुरावृत्तसरित्पतिंधिया-
सन्तीर्य्य चेदं प्रसमुद्धृतं मया।
ज्ञात्वोत्तमं रत्नमयैतदित्यरं,
राजाधिराजाय समर्पितं मुदा ॥ ४९८ ॥

मैंने यह रत्न इतिहास-सागर को अपनी बुद्धि रूपी नौका पर बैठ के पार करने पर पाया है;अतः बहुमूल्य समझ के बनेडाधीश की सेवा में सहर्ष समर्पित किया है ॥ ४९८ ॥

५--ग्रंथकार परिचयं।

२३—शिक्षावलेषु द्विजपुङ्गवेषु य-
न्निम्बार्च्यनामास्ति कुलं सुसत्कृतम्।
जोषीत्युपाधिप्रथितं गुणाकरं,
तस्मिन्प्रजज्ञे कुशलेशकोविदः ॥ ४९९ ॥

राजस्थान (राजपुताना) प्रान्त के षड् जातीय (छन्याती) ब्राह्मण वंशान्तर्गत प्रसिद्ध शिक्षावल (सिखवाल) जाति के 'जोषी' पदवी संभूषित निम्बार्च्य वंश में 'कुशलेश' नामी विद्वान् हुए थे ॥ ४९९ ॥

२४—तस्मै वनेडापतिना समर्पितः,
देवर्ष्युपाधिः सह भूप्रदानतः।
तस्य प्रनप्तुश्च सुतात्मजः सुधी-
र्जीराम शर्म्मा नगपूर्वकोऽस्म्यहम् ॥ ५०० ॥

श्रीमान प० कुशलेशजी को वनेडाधीश ने देवर्षि की पदवी और बहुत सी भूमि प्रदान की थी। मैं उन कुशलेशजी के पर-पोते का पोता हूँ, और मेरा नाम प० नगजीराम शर्मा है॥५००॥

६—उपसंहार।

२५—श्रीमद्वनेडाधिपतेरनुज्ञया,
राजेश्वरस्यामरसिंह वर्म्मणः।
ग्रन्थो मयायं ग्रथितो मनीषिणा,
श्लाघ्यः पुरावृत्तविदां मुदेसताम् ॥ ५०१ ॥

श्रीमान वनेडाधिपति राजा अमरसिंह जी की आज्ञा से मैंने यह उत्तम ग्रन्थ इतिहास-वेत्ता सज्जन पुरुषों के हर्षार्थ बनाया है॥ ५०१ ॥

२६—वर्षे छिनागाङ्कसुधांशुसम्मिते,
ग्रन्थोऽप्ययमात्पूर्तिमप नभोऽसिते।
दृश्यन्त्यवन्य सुधियोऽमलाशयाः,
एनं परार्थोदयलीनया धिया ॥ ५०२ ॥

यह ग्रन्थ संवत् १९८२ वि० के श्रावण के कृष्ण पक्ष में समाप्त हुआ। आशा है निर्मलविचार वाले परोपकारी विद्वान् इसे देखने की अवश्य कृपा करेंगे ॥५०२॥

७-आशिर्वाद पूर्वक ईश-प्रार्थना।

२७—यावत्तपेतां नभसीन्दुभास्करौ,
लोकप्रवृद्ध्यै तरसाऽचलाचरौ।
तावत्शुभं राजकुलं सुनिर्मलं,
राष्ट्रं च संतिष्ठतु काचिदं स्थिरम् ॥५०३॥

जब तक संसारमण्डल की वृद्धि के लिए दिनेश सूर्य भगवान् और निशापति चन्द्रमा आकाश मण्डल में प्रकाशित रहें; तब तक यह उत्तम राजवंश और अत्यन्त निर्मल राष्ट्र भूमण्डल पर स्थित रहें ॥५०३॥

२८—ब्राह्मणा ग्रंथकर्त्तारो वेदवेदाङ्गपारगाः।
भूयासू राष्ट्र एतस्मिन्दिष्टेऽप्यागामिकेऽच्युत
॥५०४॥

२९—इषव्याः सन्तु राजन्याः प्रजारञ्जनतत्पराः।
धर्म्मप्राणाः सुनीतिज्ञाः शूराः संग्रामको-
विदाः ॥५०५॥

३०—स्वधर्म्मनिरता वैश्या धनवन्तः प्रजाप्रियाः।
शूद्राःसेवापराः सन्तु स्त्रियःसन्तु पतिव्रताः
॥५०६॥

हे परमपिता जगदीश्वर ! आप से हमारी अन्तिम यह प्रार्थना है कि हमारे इस राष्ट्र में आनेवाले समय में ब्राह्मण वेद वेदाङ्ग में पारगत और ग्रन्थकर्त्ता हो । क्षत्रिय प्रजारञ्जक, धर्मिष्ठ, नीतिमान् और रणाङ्गण में शस्त्र धारण करके शूर वीरता प्रकाशित करने वाले हों । वैश्य अपने धर्म्म में रत, धनवान् और सर्वजन प्रिय हों और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा में परायण तथा स्त्रियाँ पतिव्रताएँ हो ॥५०४।५०५।५०६॥

८--ग्रन्थसंख्या

३१—श्लोका मयेहाश्वखबाण संमिता:,
श्रीसूर्यवश्यामलकीर्त्यलकृता: ।
वीरत्वबोधाय सतां महीभृता-
मूज्वर्थका: संग्रथिता रसान्विता: ॥ ५०७॥

मैंने इस ग्रन्थ में सूर्य वशावतस श्रीमान् राजा भीमसिंह जी की कुल-कीर्त्ति से सुसज्जित और भद्र राजाओं के शौर्य-बोधक तथा रसयुक्त ५०७ पाँच सौ सात श्लोक रचे हैं जो रमणीय भाव और अर्थ से परिपूरित हैं ॥५०७॥

इति चतुर्दश पर्व समाप्त ।

॥ समाप्तमुत्तरार्द्धम् ॥

इति श्री मद्वनेड़ाधिपते राजेश्वरस्य श्रीमदमरसिंह वर्म्मण आज्ञया प० नगजीराम शर्म्म विरचित वीरवश वर्णन समाप्तम् शुभमभूयात् ।
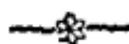
—※—

श्रीबनेड़ाधीश जन्मादि संसूचक चक्रम् ।

संख्या	नृपति नाम २	जन्म समयः ३	राजतिलक समयः ४	राजतिलक समकालीनायुः ५	राज्ञी संख्या ६	राजकुमार संख्या ७	राजकुमारी संख्या ८	स्वर्गारोहण समयः ९	पूर्ण आयुः १०	विशेष
१	राजा भीमसिंह १	सं० १७१० वि० पौष कृ० ११ सोमः	विक्रमी संवत् १७३८	वर्ष २८	१६	१२	२	वि० सं० १७५१	वर्ष ४२	
२	राजा सूर्यमल्लः	१७३८ कार्त्तिक शु० ५ भृगु	१७५२	१४	३	१	०	१७६४	२६	
३	रा० सुलतानसिंह	१७५८ वैशाख शु० ७ शनि	१७६४	६	४	१	३	१७९०	३२	
४	रा० सिरदारसिंहः	१७८० आश्विन कृ० ३० बुधः	१७९०	१०	७	२	३	१८१५	३५	
५	राजा रायसिंहः	१७९८ कार्त्तिक कृ० ३० बुधः	१८१५	१७	१	३	०	१८२५	२७	

६	रा० हम्मीरसिंह		१८१७ फाल्गुन शु० १३ बुध	१८२५	८	४	३	१	१८६१	४४	
७	रा० भीमसिंह	२	१८३७ माघ शु० १० शनि	१८६१	२४	३	६	२	१८८६	४९	
८	रा० उदयसिंह		१८५३ फाल्गुन शु० १० मंगल०	१८८६	३३	१	१	१	१८९२	३९	
९	रा० समामसिंह		१८७८ ज्येष्ठ कृ० ३ सोम	१८९२	१४	३	०	१	१९११	३३	
१०	रा० गोविंदसिंह		१८९० मा० शु० ९ मंगल	१९११	२१	४	२	०	१९६१	७१	
११	रा० अक्षयसिंह		१९२२ कार्त्तिक शु० ९ शुक्र	१९६१	३९	३	१	३	१९६५	४३	
१२	रा० अमरसिंह		१९४३ श्रावण शु० ३ सोम	१९६५	२२	१	३	०			